धन्यवाद

इस पुस्तक के प्रकाशन में लाला सुन्दरलाल रामचन्द्र जैन सोनीपत वाले व श्री ओमप्रकाश प्रोप्राईटर, फर्म जगतराम दुर्गादास लुधियाना वालों ने सहायता दी है। इन सज्जनों का हार्दिक धन्यवाद है॥

पुस्तक मिलने का पता

श्री विनयचन्द जैन, ज्ञान भण्डार, जयपुर
श्री जैनरत्न विद्यालय बुकडिपो भोपालगढ़ (मारवाड़) Ry
श्री सम्यक् ज्ञान प्रचारक मंडल, जोधपुर
श्री गूजरमल बलवन्तराय जैन, लुधियाना

"द्विवा: शब्दा."

लेखक -विद्याभास्कर विश्वनाथ शास्त्री, व्याकरणन्यायादि तीर्थ, लुधियाना।

संसार के प्राणिमात्र का अन्तिम ध्येय 'आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक' रूप त्रिविध दुःखों से छुटकारा पाना एवं सर्व प्रकार के सुखों की प्राप्ति करना है। जिसके लिये प्राणिमात्र प्रतिक्षण यत्नशील रहता है-प्राणियों के प्रत्येक विचार तथा क्रियाएँ इन्हीं प्रयोजनों से ओतप्रोत हैं। परन्तु निरन्तर यत्न करते हुये भी किसी पुरुष को ही कभी इष्ट की प्राप्ति होती है, जिसका कारण उसके पूर्व सञ्चित कर्मों का सुविपाक या दुर्विपाक ही है। प्राणी अपने जीवन काल में जैसे भी शुभ या अशुभ कर्म करता है उसके अनुसार ही शुभ या अशुभ अदृष्ट की उत्पत्ति होती है, और तदनुसार ही सुख अथवा दुःख रूप फलों का उपभोग करता है, दोनों प्रकार के इस फलोपभोग को ही विपाक शब्द से कहा जाता है। सांसारिक प्राणियों के सुरूपता कुरूपता, उच्चाभिजन नीचाभिजन, धनाढ्य एवं निर्धनादि भेद तथा अत्यन्त सुखित्व अत्यन्त दुःखित्व, सुखित्व दुःखित्वादि समस्त भेदों का कारण कर्म भेद ही हैं साधारणतया कर्म तीन प्रकार के हैं, 'मानसिक, वाचिक तथा कायिक'। उनमें से मानसिक कर्म वे कहलाते हैं जो अन्तःकरण में दया भाव

भादि सङ्कल्प रूपेण पैदा होते हैं। शरीर से किये जाने वाले पर परित्राणादि कर्म्मों को कायिक तथा वाणी द्वारा किये गये सत्यभाषणादि कर्म्मों को वाचिक कर्म्म कहते हैं। वाणी से पारस्परिक व्यवहार की सिद्धि के लिये किये जाने वाले व्यापार को ही शब्द कहते हैं।

इस ग्रन्थ का विशेष रूप से प्रतिपाद्य विषय शब्द ही है, ग्रन्थ में सर्व प्रथम शब्द के विषय में गुणत्व तथा द्रव्यत्व को बतलाते हुये शब्द के द्रव्यत्व को सिद्ध किया है। कुछ दार्शनिक शब्द को आकाश का गुण मानते हैं तथा कुछ शब्द को द्रव्य अथवा उसका पर्याय मानता है, ग्रन्थकर्त्ता ने गुणत्व पक्ष को अस्वीकृत करते हुये अनेक प्रबल प्रमाणों से से शब्द को पुद्गल (प्रकृति) द्रव्य का पर्याय (अवस्था विशेष) माना है। साथ ही शब्द किस किस प्रकार मनुष्यादि प्राणियों के शुभाशुभ का कारण बनता है इत्यादि बड़े अच्छे ढग से दिखलाया गया है, मनुष्य जिन शब्दों या शब्द समूहों का व्यवहार सिद्धयर्थ प्रयोग करते हैं उनके कतिपय भेदों तथा अवान्तर भेदों का भी बड़ी सुंदर, सरल तथा सुबोध शैली से वर्णन किया गया है।

शब्द को मोटे २ सत्य भाषा, असत्यभाषा, मिश्र भाषा, तथा व्यवहार भाषा रूप चार भेदों का सुन्दर रूप से वर्णन करने के साथ साथ उनके अवान्तर भेदों का भी बड़ी उत्तमता से वर्णन किया है। वर्णन शैली इतनी सरल है कि साधारण ज्ञान रखने वाला पुरुष भी ग्रन्थ प्रतिपादित विषय को सरलता से जान सकता है। शब्द द्रव्यत्व, शब्द के सत्य भाषा आदि भेदों के

प्रदर्शन एवं वर्णन के अनन्तर इन सब के जनक तथा उपभोक्ता पुरुष (जीव) का वर्णन बड़ी दीन हीन दशा में उसके अनुरूप ही किया गया है—क्योंकि संसार में फँसा हुआ जीव अपने अज्ञान के कारण ही शिष्टाचार तथा शास्त्रों द्वारा ज्ञात तथा प्रतिपादित धर्म्म (वस्तुधर्म) को छोड़कर एवं अपने अन्तरात्मा की कर्त्तव्य कर्मों में प्रेरक अन्तर्ध्वनि को दबा कर हिंसा अनृत भाषण, व्यभिचार, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि अन्त शत्रुओं से घिरे में आजाता है, कामादि अन्त शत्रुओं का अनुयायी बन अनिष्ट कार्य्यों में प्रवृत्त हो जाता है मलों से युक्त होने के कारण ऊपर को उभर नहीं पाता, अपितु दिनोंदिन संसारगर्त में गिरता चला जाता है। अत एव मुक्ति रूप परमलक्ष्य को प्राप्त नहीं करता अपितु लक्ष्य से कोसों दूर हटता जाता है। और घटीयन्त्र (रहट) के समान ऊँच नीच योनियों में चक्कर काटता रहता है। ग्रंथ के अन्त में जीव की उपरिनिर्दिष्ट दीन हीन दशा को दिखाने के बाद परम कारुणिक भगवान् श्री महावीर स्वामीजी महाराज द्वारा सुन्दर सारगर्भित किन्तु संक्षिप्त रूपेण जीव को मोक्ष (निर्वाणपद) प्राप्त्यर्थ उपदेश दिया गया है जो कि ग्रन्थ का अन्तिम लक्ष्य है।

ग्रंथ का नाम, ग्रंथ के प्रतिपाद्य विषय के अनुरूप "जीव शब्द संवाद" रक्खा गया है। जिससे पाठक गण ग्रन्थ को आद्योपान्त पढ़ने से पूर्व ही ग्रंथ के नाम मात्र से उस के प्रतिपाद्य विषय का समझ लेंगे। ग्रंथ के निर्माता हैं "उत्तराध्ययन सूत्र,

दशाश्रुतस्कन्धसूत्र, अनुयोगद्वार, दशवैकालिक सूत्र, तत्त्वार्थ सूत्र, जैनागम समन्वय, जैनतत्त्वकलिकाविकास, जैनागमों में अष्टांगयोग, आदि आदि के अनुवादक तथा निर्माता मुनिवर श्री १००८ उपाध्याय श्री आत्मारामजी महाराज। उपरिनिर्दिष्ट टीकारूपेण अथवा स्वतन्त्रतया लिखे गये ग्रन्थ रत्न ही आप के परिचायक हैं। आप की शान्त गम्भीर एवं सरल लेखन शैली ही आप के विशिष्ट स्वाध्याय तथा विद्वत्ता की ओर सङ्केत कर रही है। अन्त में धर्म, पिपासु विज्ञ पाठकों से अनुरोध है कि वे अपने अन्तिम ध्येय सुख प्राप्ति के लिये संसार के अनुत्तम सुख साधन शास्त्र के औचित्यानौचित्य का ज्ञान करने के लिये उक्त ग्रन्थ रत्न का सतत भावन अपनायें, और मत हित चिन्तक मुनिवर उपाध्यायजी के प्रयत्न को सफल बनाते हुये परम सुख के भागी बनें।

ज्येष्ठ शुक्ला पञ्चमी सं०२००१ वि० विश्वनाथ शास्त्री

शुद्धि पत्र

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
ग्रीष्मेॠतु	ग्रीष्मऋतु	१	३
कभी	कमी	१	१३
भला	भली	२	११
उष्णात्ता	उष्णाता	२	१६
लत्तायें	लताएं	३	१
जन्त	जन्य	३	२
और पुन स०	यह पाठ एक बार	३	१३—१४
सपत्र	सर्वत्र	४	७
पूवक	पूर्वक	४	१३
ने	×	४	२१
भ्रमण	भ्रमण	५	३
स्नग्ध	स्निग्ध	६	१
वर्ण	वर्णं	६	७
निमल	निर्मल	६	१५
शारीरिक	शारीरिक	६	१६

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
वीव्य	वीर्य्य	६	८१
स्वरूप	स्वरूप	१०	७
वणन	वर्णन	१३	१६
किसा	किसी	१४	१
को	×	१७	३
वण	वर्णं	२०	१
धम	धम	२३	१०
असरयात	असख्यात	२४	५
नीचसे	कीच से	२८	१३
कुलवद्धन	कुल वर्द्धन	२६	१३
जा	जो	२६	१६
ी	भी	२६	१४
कृष्ण वर्णं	कृष्णवर्णं	३२	१८
कहना	कहता	३३	१३
मिल ताहै	मिल जाता है	३५	२३

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
यथेष्ठ	यथेष्ट	३६	१०
उच्छखल	उच्छृ खल	३६	५
रह है	रहा है	३६	५
प्रमाणु	परमाणु	३६	१६
प्रमाणुओं	परमाणुओं	३६	१६
विवाददरा	विवादद्वारा	४०	७
कूटसाची	कूटसाची	४०	६
आगयों में	आगमों में	४०	८
।वश्वास	विश्वास	४३	३
निलज्ञ	निलज्ज	४४	५
ह	यह	४५	५
वगमें	वगमें	४५	१४
छुटन	छूटने	४५	२०
बातइए	बताइए	४६	१५
श्रातागण	श्रोतागण	४७	

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
पदापण	पदार्पण	४७	७
सघाटत	संघटित	४८	५
प्रप्रसन्न	अप्रसन्न	४८	९
सम्यजन	सभ्यजन	४८	१३
जवित	जीवित	५१	४
य	सूर्य	५१	१९
त	तो	५१	२२
होग	होंगी	५२	१
व्यतत	व्यतात	५२	६
देनदा	देनदार	५२	८
कना	करना	५२	१४
आभाप	आभास	५२	१५
हो	होगा	५३	५
स	इस	५३	२०
अपूव	अपूर्व	५४	१

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
मे ।	मेरा	५५	७
अप	आप	५७	६
काय	कार्य	५७	१०
जी० न	जीवन	५६	१६
दशन	दर्शन	५६	२१
रखता	रखता हूँ	५६	२२
अबहूँ	अब	५६	२२
बोने	बोलने	६४	८
क	के	६५	११
रूपा	कृपा	६६	२
वह	वह	६६	१६
परस्थिति	परिस्थिति	६८	११

जीव-शब्द-सम्वाद

नमोत्थुणं समणस्स भगवओ महावीरस्स"

ग्रीष्म ऋतु का अवसान और वर्षा का आरम्भ।

भास्कर की प्रचण्ड किरणों से संतप्त भूमी जनता के सन्ताप का अधिक कारण बन रही थी। अधिक उष्मासे वह व्याकुल हो उठी थी। परिश्रम करते हुए प्राणिगण प्रस्वेद से भीगे जारहे थे। चारोंतरफ उष्णता का ही साम्राज्य था। प्रत्येक स्थान अशान्तिप्रद होरहा था। जलाशय भी सूख गये थे। इसलिये वहां पर भी प्राणियों को शान्ति का लाभ नहीं होता था। इधर उष्ण वायु अपने तीव्र वेग से जनता को और भी दुःखी कर रहा था। वन के अनेक पशु पक्षी गण जलाशयों में पानी न होने के कारण पिपासा के मारे दीन मुख होरहे थे। अनेक प्रकार के शीतल उपचार करने पर भी सन्ताप में कमी नहीं होती था। प्रेमीजनों के आमोद प्रमोद उष्णता के सन्ताप से विफल हो रहे थे। चन्दनादि शीतल पदार्थों का उपचार भी सन्ताप शान्ति के लिये सर्वथा अपर्याप्त हो रहा था। पथिक जनों का गमन मार्ग भी निरुद्ध होगया था। धूप के मारे वे चलने

म असमर्थ होरहे थे। वृक्षों का सौन्दर्य भी भयानकता में बदल चुका था, उन विहारों में भी नर नारियों के चित्त को शान्ति नहीं मिलती थी। व्यापारिक लोग व्यापार में उदासीनता प्रकट कर रहे थे। प्रत्येक पदार्थ में गर्मी की प्रचण्डता के ही दर्शन होते थे। शान्ति का कहीं नाम तक नहीं था। वृक्ष और लतादिक आदि सब सूख कर निष्प्राण से बन रहे थे। ऐसी दशा में आक और जवास की अवस्था इससे सर्वथा विपरीत थी। जिस प्रकार सज्जनों को दुःखी देखकर दुर्जन पुरुषों के हृदय विकसित हो उठते हैं, उसी प्रकार उष्णता की अधिकता से जब अन्य वृक्ष अपनी शोभा से रहित हो रहे थे तब शत्रु की भांति ये दोनों आक और जवास अपने में फूले नहीं समाते थे। अर्थात् भली भांति फूले फले हुए थे। परन्तु जनता को इनके विकसित होने में कोई हर्ष नहीं था। जिस प्रकार व्रत शील-सदाचार सन्तोषी पुरुष को परस्त्री का अत्यन्त सुन्दर वेष भी मोहित नहीं कर सकता उसी प्रकार ये आक जवासादि वनस्पतियें भी अपने फूलने फलने से जनता के हृदय को प्रसन्न नहीं कर सकती। उष्णता से व्याकुल हुए पशु पक्षी जिव्हा निकाले हुए शीतलता के लिये तड़प रहे थे। तब अकस्मात् ही आकाश में बादलों का जमघट दिखाई देने लगा। उसको देख कर लोगों के हृदय में कुछ आशा का संचार हुआ। देख ही रहे थे कि बादलों ने बरसना शुरू कर दिया और इस कदर बरसे कि सारी भूमि का सन्ताप दूर होगया। पशु पक्षि गण आनन्द के मारे विभोर हो उठे। वृक्षों में नये जीवन का संचार हुआ।

चिरकाल से मुरझाई हुई पुष्प लतायें प्रफुल्लित हो उठी । चारो तरफ हरयाली ही हरयाली नजर आने लगी । उष्णता जन्त सन्ताप को जनता भूलसी गई । जिस प्रकार रवि के उदय होते ही अन्धकार भाग जाता है उसी प्रकार वर्षा के आगमन से ही उष्णता भाग निकली । अब वनों और उद्यानों की शोभा देखने योग्य थी । विविध प्रकार के सुन्दर पुष्पों की दर्शनीय आभा आनन्द मे विभोर हुए पक्षिगणों का गान, मयूरों का नृत्य और पल्लवित हुई वृक्षावली की अपूर्व शोभा, दर्शकों के मनों को बहलाकर अपनी तरफ खैंच रही थी ।

उस समय अमन्द सुगन्ध युक्त शीतल वायुका सचार, और भ्रमरों के गुंजारव का प्रचार बहुत ही सुख प्रद मालूम देता था । जिस प्रकार दुर्जनों के सग से कभी सज्जन पुरुष भी विकार को प्राप्त हो जाते हैं, और पुन सज्जनों के सग से अपने वास्तविक स्वरूप म आजाते हैं, और पुन सज्जनों के सग से अपने वास्तविक स्वरूप म आ जाते हैं, उसी प्रकार सन्तप्त भूमि की भी वही दशा हुई । वह अपनी उष्णता को त्याग कर सौम्य स्वरूप में आगई । जिधर देखो आनन्द ही आनन्द दिखाई देता था । इस समय राजगृह नगर के ईशान कोण में होने वाले गुण शील नाम के चैत्य उद्यान की शोभा तो विशेष रूप से दर्शनीय हो रही थी । प्रत्येक वृक्ष फलों मे लदा हुआ, पुष्प लताओं से व्याप्त होकर अपूर्व शोभा दे रहा था । स्थान २ पर अकृत्रिम रूप से सजी हुई छोटी २ पुष्पवाटिकायें दर्शकों को अपनी ओर

आकर्षित कर रही थी। आगन्तुकों के स्वागत के लिये उद्यान भूमी ने सर्वत्र मानों हरी मखमल बिछा रखी थी। पक्षिगण अपने मधुर संगीत से उनका मनोविनोद करने में तत्पर थे। भ्रमरों की गुंजार ध्वनि में प्रभु कीर्तन का आभास दिखाई दे रहा था। मन्द २ वायु से प्रेरित हुए वृक्ष लता पुंज, अपने कर पल्लवों से आगतुकों का मानो सप्रेम स्वागत करते हुए दिखाई देते थे। कभी २ आकाश में दिखाई देने वाली मेघमाला की गर्जना से मयूरों की केका वाणी सारे उद्यान को जगा देती थी। उससे प्रतिध्वनित हुआ गुण शील उद्यान अपने हर्षातिरेक को पूर्ण रूप से व्यक्त कर रहा था। अधिक क्या कहें उस समय तो वह साक्षात् नन्दन वन की शोभा को धारण कर रहा था।

गुण शील चैत्य उद्यान में कूटाकार के समान एक बड़ी ही भव्य उद्यान शाला थी जिस में सहस्रों नर नारी सुखपूर्वक बैठ सकते थे। उस उद्यान शाला में अपने शिष्य परिवार के साथ, सिंहासनाकार पीठ-फलक पर विराजे हुए श्रमण भगवान श्री महावीर स्वामी, मध्याह्न के सूर्य समान द्रव्य और भाव रूप अन्धकार का नाश करते हुए अपने अतिशय ज्ञान का प्रकाश कर रहे थे। इतने में आकाश प्रदेश में मेघ की गर्जना हुई उसके गम्भीर शब्द की महिमा सुन कर वहां पर बैठा हुआ श्रमण संघ अपने मन में अनेक प्रकार के विचार करने लगा, तब भगवान ने उनको सम्बोधित करके इस प्रकार बोले—

हे श्रमणों ! तुम मेघ गर्जना को सुन कर सहसा चौंक उठ

हो, और उसके विषय में तरह २ के विकल्प कर रहे हो, आओ। आज मैं तुमको इस विषय के रहस्य को समझाऊं? यह सुनते ही श्रमण संघ को बड़ा हर्ष हुआ और परस्पर में एक दूसरे से कहने लगे कि आज हमारा अहोभाग्य है जो कि भगवान ने हमें सम्बोधित कर बुलाया है। और न जाने आज हमें किस अपूर्व तत्व की प्राप्ति हो? इस प्रकार परस्पर विचार करता हुआ श्रमण और श्रमणी समुदाय भगवान की सेवा में उपस्थित होकर यथा निर्दिष्ट स्थान पर शांति पूर्वक बैठ गया और भगवान के मुखारविन्द मकरन्द का निर्निमेष दृष्टि से आनन्द पान करने लगा?

तब उस अपूर्व आनन्द में विभोर हुआ वह श्रमण संघ क्या देखता है कि भगवान के चरणों के समीप दो पुरुष और चार कुमारी बालिकाएँ हाथ जोड़े और मस्तक झुकाए हुए उपस्थित हैं, उनमें एक पुरुष विचित्र वस्त्र धारण किए हुए है और एक बालिका जो कि सोलह वर्ष की अवस्था में अपूर्व रूपलावण्य से सुशोभित होती हुई एक परम सुन्दर अतिस्वच्छ निर्मल बहुमूल्य श्वेत वस्त्र को धारण कर भगवान के चरणों में हाथ जोड़े खड़ी है। उसके भ्रमर सदृश अत्यन्त कृष्ण वर्ण के केश, और उसका मनोहर रूप लावण्य वन देवी के रूपलावण्य को भी लज्जित करता था। उसके पास ही १६ वर्ष का यौवन सम्पन्न एक दूसरी कन्या खड़ी है जो कि कृष्ण वर्ण की और कृष्ण वर्ण के ही वस्त्रों को धारण किए हुए भगवान की सेवा में उपस्थित है। उसका श्याम

वर्ण सजल मेघ-पटल की श्यामता के समान अत्यन्त स्निग्ध और अत्यन्त मनोहर था। इसलिए कृष्ण वर्ण होते हुए भी वह रूप लावण्य में प्रथम बालिका से किसी प्रकार भी कम नहीं थी। तीसरी षोडशवर्षीय बालिका भी हाथ जोड़े वहीं पर खड़ी थी। वह सामान्य रूप को धारण कर रही थी। उसका रूप यदि विशेष शोभनीय नहीं तो निन्दनीय भी नहीं था। उसके शरीर पर तीन रंग के वस्त्र थे। श्वेत, श्याम और पीत। रंग के संयोग से वस्त्रों की शोभा भी कुछ कम नहीं थी।

चौथी बालिका जो कि रूप लावण्य में सब में विशेषता रखती थी, हरे वस्त्रों से सुसज्जित होकर भगवान् के चरण कमलों में उपस्थित हो रही थी, और इन पांचों के अतिरिक्त छठा पुरुष भी नतमस्तक होकर भगवान् की पर्युपासना में लीन हुआ उनके चरणों के समीप खड़ा था। उसका रूप लावण्य भी प्रशंसनीय था, वह दर्शकों को अपनी ओर आकर्षित करने में अधिक निपुणता को लिये हुए था। उसके अति निर्मल स्वच्छ वस्त्र किंचित् लालिमा को लिए उसकी शारीरिक शोभा को और भी दोबाला कर रहे थे।

सब से प्रथम उसने ही बड़े विनीत भाव से भगवान् के समीप अपना हार्दिक भाव प्रकट करने का साहस किया। वह बोला—भगवन्! आप अनाथों के नाथ, जगत-वत्सल एवं त्रिलोकीनाथ हैं, तथा अनन्त ज्ञान, अनन्त-दर्शन और अनन्त वीर्य्य के धारक होने से सर्वज्ञ, सर्वदर्शी और सर्व शक्ति-सम्पन्न हैं। अतः सब से प्रथम मेरी आत्मकथा को सुनने की कृपा करें।

इसके उत्तर में प्रभु कुछ कहे, इससे पूर्व ही, पहले पुरुष ने कहा कि भगवान्! इससे भी प्रथम मेरी आत्म-कथा सुनने लायक है! आप कृपया प्रथम उसे सुनें, अभी उसकी बात पूरी भी होने नहीं पाई थी कि वे चारों कन्यायें बीच में ही बोल पड़ी कि भगवान्! आप सब-गुण सम्पन्न, परम-दयालु और न्यायशील हैं। अत हम अबलाओं को इन दोनों से पहले अपनी २ आत्मकथा कहने का अवसर प्रदान करने की कृपा करें। इस प्रकार अपनी अपनी आत्मकथा के निवेदन में प्रथम समय लेने की आकांक्षा से आगे बढते हुए उन सब को सम्बोधित कर प्रभु बोले-कि तुम लोग इस प्रकार कोलाहल मत करो! क्रम पूर्वक हम जिसे आज्ञा देते हैं वही अपनी आत्मकथा को सुनाने के लिए अग्रसर होवे, और दूसरे चुपचाप सुनते रहें। भगवान् के इस आदेशसे पास में बैठे हुए श्रमण संघ की प्रस्तुत विषय को सुनने की और भी उत्कण्ठा बढ़ी। वह अधीरता से उस समय की प्रतीक्षा करने लगा जब कि उनमें से कोई व्यक्ति अपनी आत्मकथा को आरम्भ करे। इतने में प्रभु का इशारा पाते ही प्रथम पुरुष ने अपना वक्तव्य इस प्रकार प्रभु के समक्ष आरम्भ किया।

भगवान्! मेरा नाम शब्द है, मैं संसार की यथावत् व्यवस्था करने वाला हूँ। मेरे प्रभाव से ही-[शब्द को सुनकर] संसारी जीव ज्ञान व अज्ञान दशा को प्राप्त करते हैं। उनके बंध और मोक्ष की व्यवस्था भी मेरे ही शासन के आश्रित है। भगवन्!

मरे मुख्य दो भेद हैं * अर्थात् भाषा और ना भाषा मे परिणत

---

* दुविहे सद्दे प० त०—भासा सद्दे चेव, णो भासा सद्दे चेव, भासा सद्दे दुविहे प० त०—अक्खर—सम्बद्धे–चेव, नो–अक्खर—सम्बद्धे चेव, णो–भासा–सद्दे दुविहे पन्नते त आउज्ज सद्दे चेव, णो आउज्ज सद्दे चेव, आउज्ज–सद्दे दुविहे प० त०—तते चेव वितते चेव, तते दुविहे प० त—घणे चेव भुसिरे चेव एव विततेवि, णो आउज्ज–सद्दे दुविहे—पन्नते त०—भूसण–सद्दे चेव नो–भूसण–सद्दे चेव, णो–भूसण–सद्दे दुविहे प० त०–ताल–सद्दे चेव लत्तिआ–सद्दे चेव, दोहि ठाणेहिं सद्दुप्पाते सिया, तजहासाहमताण चेव पुग्गलाण सद्दुप्पाए सिया भिज्जताण चेव पोग्गलाण सद्दुप्पाए सिया।

(ठाणाग सू० स्था० २ उद्दे० ३ सू० ८१)

व्याख्या—अस्य च पूर्व सूत्रेणसहायम भिसम्बन्ध —

इहानन्तरोद्देशकान्त्यसूत्रे देवाना शरीर विकुर्वित तद्वच्च शब्दादि ग्राहका भवतीत्यतः शब्द स्तानभिधास्यन्ते इत्येव सम्बन्धस्यास्य व्याख्या सा च सुकरैव, नवर भाषा श ो भाषापर्याप्ति-नामकर्मोदयापादिता जीव शब्द ,इतरस्तु नो भाषा शब्द १अक्षरसम्बद्धो-वर्ण-व्यक्तिमान् ना अक्षरसम्बद्धस्त्वितर इति, २ आतोद्य-पटहादि तस्य य शब्द स तथा नो आतोद्य शब्दो वंशस्फोटादिरूप ३, ततयत्तन्त्री प्रादिबद्धमातोद्य, ४ तच्च किंचिद् घन यथा—गिजनिकादि किंचिच्छुषिर यथा-वीणापटहादिक तज्जनित शब्दस्तता घन शुषिरश्चेति व्यपदिश्यते ५, वितत ततनिलद्द्यपटहादिरिति तदपि घन भाणकवत् शुषिर काहलादिवत् तत्र शब्दो

होकर मेरे नो स्वरूप हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक भाषा में भी मैं दो प्रकार से परिणमन करता हूं जैसे कि—

(१) अक्षरसम्बन्धित भाषा, (२) नो अक्षर सम्बन्धित भाषा। नो भाषा में द्विविध परिणमन यथा—आतोद्य और नो आतोद्य। ढोलक आदि का शब्द आतोद्य कहलाता है। और घास के फटने से जो शब्द निकलता है उसको नो आतोद्य कहते हैं। आतोद्य भी दो प्रकार का है—तन्त्री जन्य और उससे रहित। तथा तन्त्री के भी घन और सुषिर ऐसे दो भेद हैं। नो आतोद्य भी दो प्रकार का है—भूषण शब्द और नो-भूषण शब्द भूषण शब्द भी दो प्रकार का है—जैसे ताल शब्द और पादप्य प्रहार शब्द।

भगवान्! मेरी उत्पत्ति पुद्गलजन्य है, पुद्गलों के संघात

विततो घन शुषिरश्चेति चतुःस्थानकं पुनरिदमर्थः भाणिष्यते—तत वीणादिकं ज्ञेय, विततं पटहादिकम्। घनं तु कांस्यतालादि, वंशादि शुषिरं मतम्॥ १॥ इति विवक्षाप्राधान्याच्च न विरोधो मन्तव्य इति ६, भूषण नूपुरादिना भूषणं भूषणादन्यत् ७, तालो—हस्ततालं, 'लत्तिय'त्ति कांसिका, तादि आतोद्यत्वेन न विवक्षिता इति अथवा "लत्तियासद्दे" त्ति पार्ष्णि-प्रहारशब्द ॥ ८॥ उक्तं शब्दं मत्, इतस्तत्कारणनिरूपणायाह—'दोहि' त्यादि, द्वाभ्यां 'स्थानाभ्यां' कारणाभ्यां शब्दोत्पादः—स्यद् भवेत् ६ 'संहन्यमानानां च, संघातमापद्यमानानां मतां कार्यभूतः शब्दः स्यात् यथा घण्टायां वा यगति संहन्य मानत्वे इत्यर्थ। पुद्गलानां बादरपरिणामानां यथा घण्टालाला, एवं भिद्यमानानां—वियोज्यमानानां च यथा वंशदला नामिति (स्थानांगसूत्र, स्थान २, उद्देश, ३)

और मन्न से मैं उत्पन्न होता हूँ। कभी जीव के द्वारा प्रकट होता हूँ और कभी अजीव के द्वारा एवं कभी जीव अजीव दोनों के द्वारा। और मेर पुद्गल लोक के अन्त पर्यन्त विस्तृत हो जाते हैं। मेरा मधुर-गान भला किसे प्रिय नहीं लगता? मैंने अपना अधिकार जीव और अजीव सभी प्रकार के पदार्थों पर जमा रक्खा है, जनता में मेरी इस प्रकार से प्रसिद्धि हो रही है। ● घंटे के घोष में मेरा ही स्व स्वरूप है, वीणा की मधुरध्वनि में मेरा ही

● दसविहे सद्दे पन्नत्ते त-नीहारि, (१) पिंडिमे, (२) लुक्खे, (३) भिन्ने, (४) जज्जरिते, (५) दीह (६) रहस्से, (७) पुहुत्ते, (८) म, काकणी, (९) खिखिणिस्सरे (१०) ॥ १ ॥ (ठा० १, सू० ७०५)

व्याख्या-"दसविहे" इत्यादि "नीहारीमिलोगा" निहारी-घोषवान् शब्दो घण्टाशब्दवत्, पिंडिम निर्घोष विवर्जितः पटहकादिशब्दवत्, रूक्ष काकादिशब्दवत्, भिन्न कुष्टाद्युपहतशब्दवत्, झर्झरितो जजरितो वा सतन्त्रीक-करटिकादिवाद्यशब्दवत्, दीर्घो-दीर्घवर्णाश्रित दूरश्रव्यो वा मेघादिशब्दवत्, ह्रस्वो ह्रस्ववर्णाश्रयो विवक्षया लघुर्वा वीणादिशब्दवत्, "पहुत्ते य त्ति पृथक्त्वे अनेकत्वे कोथ ?

नाना तूर्याणि युगपत्संयोगे य स्वरः यमलशङ्खादिशब्दवत् स पृथक्त्व इति काकणीति सूक्ष्मकण्ठगीतध्वनि का कलाति यावत् "खिखिणी" त्ति किंकिणी क्षुद्रघण्टिका तस्या स्वरो ध्वनि किंकिणी स्वर ॥

(ठाणाग सू० स्था १० सू० ७०५)

गान है, काक की वाणी में कर्कशरूप से मेरा ही आभास है, मेघों की गर्जना, शख का घोषणा और पक्षियों के मद-स्वर मे मेरा ही आलाप होता है। ससार में जितने वाद, सम्वाद दृष्टिगोचर होते हैं, उन पर मेरा ही एक मात्र आधिपत्य है, न्यायालयों में वादी प्रतिवादी के स्वरूप का निर्माण मेरे द्वारा ही निष्पन्न होता है। ससार के जितने भी जीव हैं, उनकी हर प्रकार की यात्रा मेरे ही अधीन है। भगवान्! कहा तक कहँ ससार का सारा व्यवहार एक मात्र मेरे पर हो निर्भर है।

प्रभो! मेरा परिणमन दो प्रकार से होता है। एक शुभ रूप, और दूसरा अशुभ-रूप। सम्पूर्ण श्रुतज्ञान का प्रदर्शन मेरे ही द्वारा किया जाता है। सम्यग्-श्रुत और मिथ्या श्रुत दोनों का उपदेष्टा मैं ही हूँ। स्वाध्याय, वाचना, पृच्छा, अनुवृत्ति और धर्म कथा आदि मे सर्वत्र मेरा ही प्रमुख है। ससारवर्ती जीवों को सम्यक्त्व का लाभ करा कर ससार-समुद्र से पार कराना और मिथ्यात्व के द्वारा ससार में गोते खिलाना मेरे बाएँ हाथ का खेल है। शात आत्मा को क्रोधादि कषायों से व्याकुल करना और क्रोधादि से अभिभूत आत्मा को कषाय-रहित बनाना मेरे ही अधिकार में है। भगवान्! मैं अपने प्रभाव का कहा तक वर्णन करूँ? मेरे उग्रस्वरूप से (घोर शब्द से) सारी भूमी काप उठती है, पशु पक्षी त्रस्त हो उठते हैं, ससार में हलचल मच जाती है। यह मेरा सर्व सम्मत प्रभाव है। मेरा व्यक्त-स्थूल स्वरूप तो सब के अनुभव में आता है परन्तु मेरे सूक्ष्म स्वरूप का

छद्मस्थ आत्मा नहीं जान सकता। * कोई-कोई वादी मुझे आकाश का गुण मानते हैं पर मैं आकाश का गुण न होकर पौद्गलिक अर्थात् पुद्गल का पर्याय रूप हूँ ×।

---

* दस बोल को छद्मस्थ आत्मा सर्व भाव से नहीं जान सकता उसमें शब्द का भी निर्देश है यथा—'दस ठाणाइं छउमत्थे सव्वभावेणं न जाणइ न पासइ तंजहा धम्मत्थिकायं (१) अधम्मत्थिकायं (२) आगासत्थिकायं (३) जीवं असरीरपडिबद्धं, (४) परमाणु-पोग्गलं, (५) सद्दं, (६) गंधं (७) वातं (८) अयं जिणे भविस्सइ वाणवा भविस्सइ, (९) अयं स व्वदुक्खाणं अन्तं करेस्सति वा न वा करेस्सइ (१०) एयाणि चेव उप्पण्णनाण दंसणधरे अरहा जिणे केवली सव्वभावेणं जाणइ पासइ तंजहा धम्मत्थिकायं जाव करेस्सति वा न वा करेस्सन्ति।

(भगवती शतक ८ उद्दे-२ सू० ३१७)

भावार्थ—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, शरीर रहित जीव, परमाणु पुद्गल, शब्द, गंध और वायु तथा यह जिन होगा कि नहीं? यह सब दुःखों का अन्त करेगा या नहीं? इन दस बातों को छद्मस्थ आत्मा सब प्रकार से नहीं जान सकता। किन्तु जो अरिहंत जिन या केवली हैं वही सर्व प्रकार से जानते हैं।

× सद्दंधयार उज्जोओ पभा छायातवेइ वा।
वण्ण-रस गंध फासा, पुग्गलाणं तु लक्खणं ॥ १२ ॥
(छाया)—शब्दोऽन्धकार उद्योत प्रभा छायातप इति वा।
वर्ण-रस गंध-स्पर्शा, पुद्गलानां तु लक्षणम् ॥ १२ ॥
(उत्तराध्ययन अ० २८)

भगवान्! मेरे परमाणु अत्यन्त सूक्ष्म होने पर भी वे मन पर बड़ा ही विलक्षण प्रभाव डालते हैं। संसार का व्यापारी वर्ग तो प्राय मेरे पर ही निर्भर है, टेलीफोन (Telephone) में मेरा स्वरूप कितना स्फुट और रेडियो (Radio) में मेरी व्यापकता कितनी प्रकट है। यह तो आजकल सभी को ज्ञात है। हजारों कोसों दूर में बैठे हुए लोगों को घर बैठे समाचार पहुंचाना यह कोई साधारण बात नहीं है। तथा ग्रामोफोन (Gramophone) यन्त्र ने मेरी पौद्‌गलिकता को स्फुट करने में किसी प्रकार की भी कसर नहीं रक्खी फिर भी मुझे आकाश का गुण कहना व मानना एक प्रकार की धृष्टता के सिवाय और क्या हो सकता है?

सर्वज्ञदेव! अन्त में आपके श्री चरणों में मेरी विनम्र शब्दों में प्रार्थना है कि आप सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं। अतः आप मेरे स्वरूप को पूर्ण रूप से जानते हैं? परन्तु फिर भी मैं यही प्रार्थना करूंगा कि सब से बड़ा मैं हूं, संसार के सब कार्यों को निष्पन्न करने में मैं सब प्रकार से समर्थ हूं इसलिए सब से प्रथम मेरा ही विषय आप वर्णन करने की कृपा करें, अब मैं अपना स्थान ग्रहण करता हूँ।

इस प्रकार प्रथम पुरुष का भाषण समाप्त होने पर भगवान् की अनुमति से पहली षोडश वर्षीया कन्या-जो कि श्वेत वस्त्र धारण किए हुए अपने रूप लावण्य से दर्शकों के चित्तों को आकर्षित कर रही थी, भगवान् के चरण-कमलों में उपस्थित होकर विनय पूर्वक प्रार्थना करती हुई बोली—

भगवन् ! मेरा नाम सत्य भाषा है। मेरा नाम भी गुणनिष्पन्न है, जैसा मेरा नाम है उसके अनुरूप ही मेरा काम है। मैं सदा सत्य ही बोला करती हूँ। इस प्रथम पुष्प-शब्द ने आप श्री के सम्मुख जो कुछ भी निवेदन किया है, मैं तो उसे मात्र प्रलाप ही समझती हूँ। कारण-एक तो यह व्यभिचारी है, कभी जीव के आश्रित हो जाता है और कभी अजीव के तथा कभी दोनों के, फिर यह भी निश्चय नहीं होने पाता कि यह शब्द सत्य है या मिथ्या। मालूम होता है कि इसने इसीलिये अपने साथ किसी विशेषण को नहीं रक्खा। क्या ऐसा व्यक्ति कभी प्रामाणिक माना जा सकता है ? यदि मेरे विषय में पूछा जाय तो मैंने तो केवल जीव का ही आश्रय लिया हुआ है। उससे भिन्न मेरा कोई आश्रय नहीं, यद्यपि मैं आत्मा से भिन्न हूँ * तथापि आत्मा के आश्रित

---

* रायगीहे जाव एवं वयासी आयभंते! भासा अन्ना भासा ? गोयमा! नो आया भासा अन्ना भासा, रूवि भंते ? भासा अरूवि भासा ? गोयमा! रूवि भासा नो अरूवि भासा, सचित्ता भंते! भासा अचित्ता भासा ? गोयमा! नो सचित्ता भासा अचित्ता भासा, जीवा भंते! भासा अजीवा भासा ? गोयमा नो जीवा भासा अजीवा भासा, जीवाण भंते! भासा अजीवाण भासा ? गोयमा! जीवाण भासा नो अजीवाण भासा, पुव्वि भंते! भासा भासिज्जमाणी भासा, भासा समय वीतिक्कन्ता भासा ? गोयमा! नो पुव्वि भासा भासिज्जमाणी भासा णो भासा समयवीतिक्कन्ता भासा, पुव्वि भंते! भासा भिज्जति, भासिज्जमाणी भासा भिज्जति भासा समय वीतिक्कन्ता भासा भिज्जति ! गोयमा! नो पुव्वि भासा भिज्जति भासिज्जमाणी भासा भिज्जति

होकर ही रहती हूँ। इस लिए मेरे सतीत्व में किसी प्रकार का भी

ना भाषा समय यातिवकत्ता भाषा भिजति। कति विहाय भने! भासापण्णत्ता? गोयमा! चउव्विहा भाषा पण्णत्ता, तजहा सच्चा मोसा सच्चामोसा असच्चा मोसा। (सू० ४६३)

टीका–"रायगिहे" इत्यादि आयया मते! मासति वाक्त्वाऽध्येय आत्मा जीवो भाषा जीव स्वभावा मापेत्स्य यतो जीवेन व्यापायते जीवस्य च बंध मोक्षार्थो भवति ततो जोव धमत्वाज्जीव इति व्यपदेशार्हो ज्ञानवदिति, अथान्या भाषा-न जीव स्वरूपा श्रोत्रेन्द्रिय ग्राह्यत्वेन मूर्ततयाऽऽत्मनो मिलक्षणत्वादिति शब्दा अत प्रश्न। अथोत्तर-नो आया भासत्ति, अत्मरूपा नाभी भवति, पुद्गलमयत्वादात्मना च निसृज्यमानत्वात्तथा विधलाग्निवत्, अचेतनत्वाचाकाशवत्। यचोक्त जीवेन व्यापायमाणत्व जीव इत्यादि तदनैकान्तिकम्, जीव व्यापारस्य जीवादत्यन्त भिन्न स्वरूपेष्वपि दर्शनादिति। रूविभते-भासाक्ति-रूविणी भदन्त! भाषा श्रोत्रस्यानुग्रहोपघातकारित्वात्तथा विधकर्णाभरणादिवत् इति शका, अत प्रश्न, उत्तरं रूविणी भषा, यश्चचक्षुग्राह्यत्वमरूपित्वसाधनायेवार, तदनैकान्तिक, परम शुभ्रापुद्गिशाचा दीनां रूपवतानामपि चक्षुरग्राह्यत्वेना भिमतत्वादिति, अनात्मरूपापि सचित्ताऽसौ भविष्यति जीव शरीरवदिति पृच्छन्नाह-सचित्तेत्यादि, उत्तर तु नोसचित्ता जीव निसृष्ट पुद्गल सहति रूपत्वात्तथा विध लोष्टवत्, तथा जीवा मते!" इत्यादि जावत तिभासा भाषा धारण स्वरूपा भाषा, उतैतद्विलक्षणेति प्रश्न अथोत्तर नोजीवा, उच्छ्वासादि प्राणानामस्या अभावात् इति। इह कैश्चिदभ्युपगम्यते अपौरुषेया वेदभाषा, तन्मत मनस्याधानाय जीवाणा मित्यादि, उत्तर तु

दोष नहीं आता ? मैं भाषण से पूर्व व पश्चात् भाषा नहीं कहलाती किन्तु जिस समय मुझे कोई बोलता है, उसी समय मैं भाषा कहलाती हूँ मैं रूपी हूँ, अचित्त हूँ, अजीव हूँ और जीवों द्वारा प्रकट होती हूँ।

जीवाना भाष", यथाना तत्वादि व्यापार पलात् तात्यादि ध्यायास्य जीवाश्रितत्वात् , यद्यपिचा जीवेभ्य शब्द उत्पद्यते तथापि नासौ भाषा भाष पर्याप्ति जन्यस्यैव शब्दस्य भाषात्वेनाभिमतत्वा दति। तथा "पुव्वि" मित्यादि, अथोत्तर नौ पूर्वं भाषणात् भाषा भवति मृत्पिण्डावस्थाया घ इव, भाष्यमाणा—निसर्गावस्थायां वर्तमाना भाषा घटावस्थायां घट इव, "नो" नैव भाषा समयव्यतिक्रान्ता भाषा भमया निसृज्यमाना वस्थातो यावद् भाषा परिणाम समयस्तं व्यतिक्रान्ता या सा तथा भाषा भवति, घट समयातिक्रान्तघटवत् कपालावस्थाघटवदित्यर्थ। "पुव्वि" भते इत्यादि, अथोत्तर 'नो" नैव पूर्वं निसर्गसमयाद् भाषा द्रव्यभेदेन भाषा भिद्यते, भाष्यमाणा भाषा भिद्यते, अयमत्राभिप्राय इह कश्चिन्मन्द प्रयत्नो वक्ता भवति सचा भिन्नान्येवाशब्द द्रव्याणि निसृजति, तानिच निसृष्टान्यसंख्येया त्मकत्वात् परिस्थूलत्वाच्च विभिद्यन्ते, विभिद्य चानिच संख्येयानि योजनानि गत्वा शब्द परिणाम त्यागमेव कुर्वन्ति कश्चित्तु महाप्रयत्नो भवति स खलुआदान निसर्ग प्रयत्नाभ्या भित्वैव निसृजति तानि च सूक्ष्मत्वाद् बहुत्वाच्चा-नन्त गुण वृध्द्या वर्द्धमानानि पर्यन्तु ल्कि लोकान्तमाप्नुवन्ति, अत्र च पर्यामवस्थाया शब्द परिणामस्तस्यां भाष्यमाणताऽवसयति, 'नो भासा समय वी इक्कते" त्ति परित्यक्त भाषा परिणामेत्यर्थ उत्कृष्ट प्रयत्नस्य तत्रानौ निद्र सम्भादिति भाव [भग० सू० श० १३ उ०]

भगवान् मेरे सूक्ष्म परमाणु चार * स्पर्श वाले हैं और वे लोक के अन्त तक जा सकते हैं उनकी गति असंख्यात योजन पर्यन्त होती है। जब तीर्थंकर देवों के जन्म आदि कल्याण को का समय आता है तब शक्रेन्द्र की आज्ञा से अभियोगिक देव, सुघोषा सुस्वर नाम वाले घंटे से इन्द्र के आदेश को सुनाता है, उसका वह वचन बत्तीस लाख विमानों के घंटों में जा पहुंचता है तब बत्तीस लाख विमानों के देव अपने २ घंटों से इन्द्र के आदेश को सुनते हैं। +

---

* "मणुओगे य ओगेय च उफासे"—सूक्ष्म परिणाम पुद्गल रूपमत श्चतुःस्पर्शं, ते च शीतोष्ण स्निग्ध रूक्षा [भगवती सू० शत० १२ उद्दे० ५]

+ मूल । तए णं से हरिणेगमेसी देवे पायत्ताणीया हिवई सक्केणं २ जाव एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठ जाव एवं देवोत्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेइ २ त्ता सक्कस्स ३ अंतियाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता जेणेव सभाए सुहम्माए मेघोघरसि अगम्भीरमहुरयसद्द जोअणपरिमण्डला सुघोसा घण्टा तेणेव उवागच्छइ २ त्ता तं मेघोघरसिं अगम्भीर महुरयरसद्द जोअण परिमण्डलं सुघोसं घण्टं तिक्खुत्तो उल्लालेइ, तए णं तीसे मेघोघरसि अगम्भीरमहुरयरसद्दाए जोअणपरिमण्डलाए सुघोसाए घण्टाए तिक्खुत्तो उल्लालिआए समाणाए सोहम्मे कप्पे अण्णेहिं एगूणेहिं बत्तीसविमाणावाससयसहस्सेहिं अण्णाइं एगूणाइं बत्तीस घण्टासयसहस्साइं जमगसमगं कणकणारावं काउं पयत्ताइं हुत्था इति, तए णं सोहम्मे कप्पे पासायविमाणनिक्खुडावडिअसद्दसमुट्ठिअ घण्टापडिंसुआसयसहस्स संकुले जाए आवि हुत्था इति, तए णं तेसिं सोहम्मकप्पवासीणं बहूणं वेमाणियाणं देवाण य देवीण य

गहपमत्तणिघामत्तनिसयसुहमुच्छिग्राण दूसरघण्टरसि अति उलवाल पूरि श्रचरन पडिवोण्ये कण समाणे घासणकोऊहलदिएण कएण ग एगचित्त उवउत्तमाणसाण सेपायत्ताणी श्राहिवई देवे तमि घण्टरवसि निसन्तपडिसतमि समाणमितंत्थ तत्थ तदि २ देसे महयामहया सद्देण उग्घोसेमाणे २ एवं वयासीति हन्त ! सुणन्तु भवता वहवे सोहम्म कप्पवासी वेमाणि श्रदेवा देवाश्रो श्र साहम्मकप्प वइणो इणमो वयण हिश्रसुहत्थं –आणावइ ए भो सक्के त चेव जाव श्रति श्र पाउब्भवहत्ति,

व्याख्या! तए ण से हरिणेगमेसी' इत्यादि, तत स हरिणेगमषी देव पदात्यनीकाधिपति शक्रेण देवेन्द्रेण देवराजा एवमुक्त सन् हृष्ट इत्यादि यावदेव देव इति श्राज्ञया विनयेन वचन प्रति शृणोति प्रतिश्रुत्य च शक्रान्तिकात् प्रतिनिष्क्रामति प्रतिनिष्क्रम्य च यत्रैव सभायां सुधर्मायां मेघौघरसितगम्भीरमधुरतरशब्दा योजनपरिमण्डला सुघोषा घण्टा तत्रैवोपागच्छति उपागत्य च ता मेघौघरसितगम्भीरमधुरतरशब्दां योजनपरिमण्डलां सुघोषां घण्टां त्रिकृत्व उल्लालयतीति, उल्लालनानन्तर यदजायत तदाह 'तए ण तीसे मेघोघरसि अगम्भीरमहुरयर' इत्यादि, तत –उल्लालनानन्तर तस्यां मेघौघरसितगम्भीरमधुरतरशब्दायां योजनपरिमण्डलायां सुघोषायां घण्टायां त्रिकृत्व उल्लालितायां सत्यां सौधर्मे कल्पे अन्येषु एकानेषु द्वात्रिंशत् विमानरूपा ये आवासा–देवावासस्थानानि तेषां शतसहस्रेषु अत्र सप्तम्यर्थे तृतीया अन्यान्यपि एकोनानि द्वात्रिंशद् घण्टाशतसहस्राणि यमकसमक–युगपत् कणकणारावं कर्तुं प्रवृत्तान्यभवन्, अत्रापि शब्दा भिन्नक्रमत्वात् घण्टाशतसहस्राण्यपि इत्येवं योजनीय, अथ घण्टानादे जाते यत् प्रवृत्त तदाह 'तए ण मित्यादि, 'तत' घण्टानां कणकणारावप्रवृत्तेरनन्तर सौधर्म कल्पप्रासादाना

भगवान् ! मैं जनता म * चार रूप म प्रसिद्ध हो रही हूँ। यथा–सत्य भाषा, असत्य भाषा, मिश्र भाषा और व्यवहार भाषा। इन चारों का सर्व कालके तीर्थंकराने वर्णन किया है × तथा ये चारों

विमानाना या ये निष्कुटा–गम्भार प्रदेशास्तेषु ते आपतिता सम्प्राप्ता शब्दा शब्दगणा पुद्गलास्तेभ्य समुत्थितानि यानि घण्टाप्रतिश्रुता–घण्टासम्बन्धि प्रतिशब्दाना शतसहस्राणि तै सकुलो जातश्चाप्यभूत्, किमुक्त भवति घण्टया महता प्रयत्नेन ताडिताया ये विनिर्गता शब्द पुद्गला स्तत्प्रतिघातवशात सर्वासु दिक्षु विदिक्षु च दिव्यानु भावत समुच्छलितै प्रतिशब्दै सकलोऽपि सौधर्म कल्पो बधिर उपजायत इति, एतेन द्वादशयोजनेभ्य समागत शब्द श्रोत्रग्राह्यो भवति न परत तत कथमेकत्र ताडिताया घण्टया सर्वत्र तच्छब्दश्रुतिरुपजायत इति यदुच्यत तदपाकृतमवसेय, एवम्भिधानु भावत तथारूपशब्दोच्छलने यथोक्त दोषासम्भवात्, एव शब्दमये सौधर्मे कल्पे सञ्जाते पदातिपतिर्यद करोत् जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति तीर्थंकर जन्म महोत्सव।

* अह भिक्खू णं जाणेज्जा चत्तारि भासा जायाइं, तं जहा—सच्चमेगं पढम भासज्जय, बिइयं मोसं तइयं सच्चामोसं, जं णेव सच्चं णेव मोसं 'असच्चामोस" णाम तं चउत्थ भासज्जातं [७७१]

× सेबेमि जे अतीता जेय पडुप्पन्ना जेय अणागता अरहंता भगवंतो सव्वे ते एयाणि चेव चत्तारि भासज्जायाइं भासिंसु वा भासिस्संति वा, पण्णविंसु वा पण्णवंति वा पण्णविस्संति वा। सव्वाइं च णं एयाणि अचित्ताणि वण्णमंताणि गंधमंताणि रसमंताणि फासमंताणि चयोवचइयाइं विप्परिणाम धम्माइं भवतीति समक्खायाइं [७७२] आचराग सू० अ० १२१ ।

हो यण, गन्ध रस और स्पर्श वाली, एव चय उपचय विपरिणाम धर्म को प्राप्त करती रहती हैं। परन्तु इन चारों में प्रधान स्थान मेरा ही है, क्योंकि मेरा नाम सत्य भाषा है। मेरा व्यवहार करने वाला ही लोक में सब से अधिक प्रामाणिक माना जाता है। भगवन्! गौतमस्वामी के पूछने पर मेरे (अर्थात् भाषा के) आदिकारण, मेरी उत्पत्ति और मेरे संस्थान तथा पर्यवसान के विषय में आप श्री ने जो कुछ * फर्माया है वह सर्वथा मनन करने योग्य है। मेरा आदि

---

* भासाणं भंते ! किमाइया किं पवहा किं सन्ठियाकिं पज्जवसिआ! गो० ! भ पाणं जीवादीया सरीरप्पभवा वज्ज संठिया खागत पज्ज; वसिया पणत्ता,—'भासा क आ य पभवंति कतिहिव समण्हि–भासति अभास भासा कतिप्पगारा कतित्र भासा–अणुमयाउ ॥ १ ॥ सरीरप्पभवा भासा दोहिय समएहिं भासता भास। भासा च चउप्पगारा दोण्णिय भासा अणु मता ३ ॥ २ ॥ प्रज्ञापना सू० भाषापद ११

टीका—'भासाणं भंते ! किमाइया' इत्यादि, भाषा अवबोध बीज भूता इमिति वाक्य लकारे, किमादिका–उपादान कारण व्यतिरेकेण किमादि – मौल कारण यस्या सा किमादिका तथा किं प्रभवा–कस्मात् प्रभवा— उत्पादो यस्याह सा किं प्रभवा, सत्यपि मौले कारणे पुन कस्मात् कारणा– त्सा दुत्पद्यते इति भाव, तथा किं सस्थितेति—केना कारेण संस्थिता किं संस्थिता 'कस्यवसंस्थानमस्या इति भाव, तथा किं पर्यवसिता इति– कस्मिन् स्थाने पर्यवसिता–निष्ठागत किं पर्यवसिता ! भगवानाह— गौतम "जीवा दिया" जीव आदि — मौल कारण यस्याः सा जीवादिका, जागत तथा विध प्रयत्न मतरेणा बोध बीज भूत भाषाया असम्भवात्

आह च भगवान् भद्रबाहु स्वामी—"तिहिं समएहिं जीवपएसा हवंति जीवस्स। जहि २ गेण्हइ गहणतो भासइ भासओ भास ॥ १ ॥ 'किं पभवा" इत्यस्य निर्वचनमाह—"शरीर प्रभवा" औदारिक वैक्रियाहारकान्यतमशरीरसामर्थ्येन भाषाद्रव्यविनिर्गमे तथा किंसंस्थिता इत्यस्य निर्वचन "वज्रसंस्थिता" वज्रस्येव संस्थानं यस्याः सा वज्रसंस्थिता, भाषाद्रव्याणि हि तथाविधप्रयत्न निसृष्टानि सन्ति सकलमपि लोकमभिव्याप्नुवन्ति, लोकश्च वज्राकारसंस्थित इति भाषापि वज्रसंस्थिता, किं पर्यन्तमितेरस्य निर्वचन लोकान्तपर्यवसिता, परतो भाषाद्रव्याणां गत्युपष्टम्भक धर्मास्तिकायाभावतो गमनासम्भवात् प्रज्ञप्तामया शेषैश्च तीर्थकृद्भिः ॥ पुनरपि प्रश्नमाह भासा कओ य पभवा, इत्यादि, भाषा कुतः— योगात् प्रभवति-उत्पद्यते, काययोगाद् वाग्योगाद् वा ? तथा कतिभिः समयैर्भाषा भाषते ? निर्वचन मत्र ति। कतिभिः समयैर्निसृज्यमानद्रव्यसमूहात्मिका भाषा भवति, तथा भाषा कति प्रकाराः कति प्रभेदाः ? कति वा भाषाः साधूना वक्तुमनुमता-अनुज्ञाता ? अत्र निर्वचन—"शरीर प्रभवा" इत्यादि अत्र शरीर शब्देन शरीरयोग परिगृह्यते, शरीर मात्र प्रभवत्वस्य प्रागेव प्रतिपादितत्वात् शरीरप्रभवा इति कोऽर्थः ? काययोग प्रभवा तथाहि काययोगेन भाषा-योग्यान् पुद्गलान् गृहीत्वा भाषात्वेन परिणमय्य वाग्योगेन निसृजति, ततः काययोगाद् भाषा उत्पद्यत इति काय-योग-प्रभवेत्युक्त, आह च भगवान् भद्रबाहुस्वामी—'गिण्हइ य काइएणं निसरइ तह वाइएण जोगेणं" इति कइहिं व समएहिं भासइ भासमित्यस्य निर्वचन द्वाभ्यां समयाभ्यां भाषते भाषा, तथाहि—एकेन समयेन भाषा योग्यान् पुद्गलान् गृह्णाति, द्वितीये समये भाषात्वेन परिणमय्य निसृजतीति।

(प्रज्ञापना सूत्र ११ भाषा

कारण जीव है, मेरी उत्पति शरीर में है मेरा सस्थान यथाकार और पर्यवसान लोक का अन्त है। अर्थात मेरे परमाणु लोक के अन्त तक जा सकते हैं। तथा श्री नन्दी सूत्र * द्वारा यह तो

---

* भासासमसेढिश्रो सद्द, ज सुणइ मीसिय सुणइ।
वीसेढी पुण सद्द सुणेइ नियमा पराघाए ॥ ७६ ॥
(भाषा-समश्रेणीत शब्द य शृणोति मिश्रित शृणोति।
विश्रेणि पुन शब्द, शृणोति नियमात् पराघाते ॥)

टीका—भासा-समेत्यादि, भाष्यते इति भाषा—वाक् शब्द-रूपतया उत्सृज्यमाना द्रव्य-सतति सा च वर्णात्मिका भेरी भकारादि-रूपा वा द्रष्टव्या, तस्या समा श्रेणयो नाम क्षेत्र-प्रदेश-पक्तयो भिर्घयन्ते, ताश्च सर्वस्यैव भाषमाणस्य षट्सु दिक्षु विद्यन्ते यावत्स्पृष्टा सती भाषा प्रथम-समये एव लोकान्तमनुधावति, भाषा समश्रेण्य समश्रेणि-ग्रहण विश्रेणि-व्यवच्छेदार्थं, भाषा-समश्रेणि इतो-गत प्राप्ता भाषा-समश्रेणीत भाषा समश्रेणिव्यवस्थित इत्यर्थ य शब्द पुरुषादि-सम्बन्धिन भेर्यादि सम्बन्धिन वा शृणोति तत्पदानित्याभिसम्बन्धात् त मिश्र शृणोति, उत्सृष्ट-शब्द द्रव्य भावित-तान्तरालस्थ-द्रव्य मिश्र शृणोतीति भावार्थ। वीसेढीत्यादि श्रन्त इति वर्तते, ततोऽयमर्थ -विश्रेणि पुनरिति-प्राप्ता विश्रेणि-व्यवस्थित पुनरित्यर्थ अथवा विश्रेणिरिति तो विश्रेणिरित्युच्यते शब्द शृणोति नियमात् पराघाते सति, नान्यथा, किमुक्त भवति ? उत्सृष्ट-शब्द-द्रव्य शब्दा-(शब्द द्रव्या) भिघातेन यानि वासितानि शब्द द्रव्याणि तान्येव केवलानि शृणोति, न कदाचिदपि उत्सृष्टानि, कुत इति चेत् उच्यते तेषामनुश्रेणिगमनात् प्रतिघाताभावाच्च।

(नन्दी सूत्र, सू० ३७ पृष्ठ १८४)

स्पष्ट ही है कि भाषा की समश्रेणि में रहा हुआ शब्द रूप से छोड़ा जाता हुआ पुद्गल समूह भाषा कहलाता है, उसके प्रचारार्थ क्षेत्र प्रदेश की पंक्तियां समश्रेणि हैं, जो हर एक वक्ता के छहों दिशाओं में होती हैं। उनमें छोड़ी गई भाषाएँ प्रथम समय में ही लोकान्त तक चला जाती हैं, उन श्रेणियों में रहा हुआ जो सुनता है वह मिश्र-बीच के शब्द द्रव्यों से मिश्रित शब्द को सुनता है, और विश्रेणि में नियम से पर द्रव्यों के अभिहत अर्थात् उत्कृष्ट शब्द द्रव्यों के अभिघात से आहत होने पर ही शब्द को सुनता है।

इसके अतिरिक्त मेरा और महत्त्व देखिये-मैं सम्यग्-दर्शन से युक्त होती हुई पदार्थों का यथार्थ स्वरूप वर्णन कर रही हूँ, यथा-धर्म अधर्म, आकाश, काल, जीव और पुद्गल ये छहों द्रव्य अनादि अनन्त हैं। इन्हीं के समूह को लोक या जगत कहते हैं। अनादि निधन होने से इस लोक का कोई निर्माता या कर्मफल दाता नहीं है। अनन्त आत्माएँ अपने २ द्रव्य गुण और पर्याय से युक्त हैं, वे जिस प्रकार के कर्म करते हैं उसके अनुसार फल का स्वयं उपभोग करते हैं इसमें और किसी व्यक्ति का सम्बन्ध नहीं है। यदि संक्षेप से कहूँ तो जीव और अजीव ये दो ही द्रव्य हैं, फिर यदि व्यवहार नय का आश्रय लिया जाय तो इनका विस्तार नव तत्त्व के नाम से किया जाता है यथा-(१) जीवतत्त्व (२) अजीव-तत्त्व, (३) पुण्य-तत्त्व, (४) पाप-तत्त्व, (५) आश्रव तत्त्व, (६) संवर तत्त्व, (७) निर्जरातत्त्व, (८) बन्ध-तत्त्व, और (९) मोक्षतत्त्व।

इन तत्वों के स्वरूप–निर्णय के लिये लिये सात नय, चार प्रमाण और चार निक्षेपों का अभिधान किया गया है, इनके द्वारा सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है।

सर्वज्ञदेव! यह आत्मा न तो विभु है न अणु, किन्तु शरीर प्रमाण होता हुआ लोक के असंख्यात आकाश के प्रदेशों के समान असंख्यात प्रदेशों के धारण करने वाला है। मेरा और मेरा सम्बन्ध गर्भावास में ही भाषा पर्याप्ति के नाम से हो गया था। अतः सम्यग्दर्शन के कारण से मैं मेरे और जगत् के स्वरूप को यथारूप से वर्णन कर रहा हूँ।

प्रभो! मुझे इस बात की बड़ी ही प्रसन्नता है कि आपने भी अपने वचन योग में मेरे को स्थान दिया है तथा सरस्वती के नाम मुझे विख्यात कर दिया है। यह मेरे परम सौभाग्य की बात है।

नाथ! कर्मों के वशीभूत होकर यह लोक–संसार, नरक तिर्यक्, मनुष्य और देव–पर्यायों को धारण कर रहा है। अधो–लोक में सात नरक हैं जिनका अत्यन्त भयंकर स्वरूप मैंने आपके द्वारा आगमों में प्रदर्शित किया है आगमों से ही उक्त विषय का स्वरूप जनता अवगत कर सकता है। तिर्यक्लोक में असंख्यात द्वीप और समुद्र हैं, उनमें अढ़ाई द्वीप को छोड़कर शेष द्वीपों और समुद्रों में प्रायः देव और तिर्यंचों का निवास है।

भगवन्! तिर्यक् लोक में पंच स्थावर–पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय और वनस्पतिकाय, तथा चार त्रस–दो इन्द्रिय वाले जीव, तीन इन्द्रिय वाले जीव, चार इन्द्रिय वाले

और पाच इन्द्रिय वाले जीव, इन सब की तिर्यञ्चों में गणना की जाती है। यद्यपि मनुष्य और देव भी पाच इन्द्रिय वाले होते हैं तथापि वह मनुष्य और देव गति वाले जीव कहे जाते हैं।

पतितपावन! इसके अतिरिक्त ऊर्ध्व— लोक में प्राय वैमानिक देवों के निवास-स्थान हैं उनके विमानों की रचना बडी अद्भुत होती है। प्राय ज्यादा पुण्य कर्म करने वाले जीव ही इन स्थानों में उत्पन्न होते हैं। यहा इतना ध्यान रहे कि पुण्य का कथन तो व्यवहार सापेक्ष है किन्तु बहुत से सुलभ-बोधि जीव भी वहां पर विराजमान हैं, तथा एक भवावतारी जीव भी वहा पर विद्यमान हैं, और लोक के अन्त में सिद्ध भगवान विराजमान हैं जो जन्म मरण के दुखों से मुक्त होकर अजर अमर बन हुए परमानन्द पद मोक्षपद को प्राप्त हो रहे हैं। इस गति को प्राप्त होने वाले जीव ही सिद्ध पद से अलकृत होते हैं। कारण कि ज्ञानावरणीय आदि आठ प्रकार के कर्मों का क्षय करके वह जीव इस गति-सिद्धगति को प्राप्त कर सकता है। तथा मैंने जीव अजीव एव रूपी, अरूपी पदार्थों का यथार्थ तथा विस्तार से आपके प्रवचन में कथन किया है। यह सब सम्यग्दर्शन और सम्यग् ज्ञान का ही माहात्म्य है क्योंकि इन दोनों के ही कारण से मेरी-अर्थात् सत्य भाषा की प्रवृत्ति होती है। मेरा अधिक और स्पष्ट स्वरूप जैन-प्रवचन में देखना चाहिए।

तीर्थंकर देव! मैंने जनता को व्यवहार और भावसत्य में प्रतिष्ठित करने के लिए दश प्रकार के रूपों को धारण कर रक्खा

है। यथा—(१) जनपदसत्या, (२) सम्मतसत्या, (३) स्थापनासत्या, (४) नामसत्या, (५) रूपसत्या, (६) प्रतीत्यसत्या, (७) व्यवहार सत्या (८) भावसत्या (९) योगसत्या और (१०) औपम्यसत्या *

(*)—सच्चाए भंते! भासा पज्जत्तिया कति विहा पन्नत्ता? गोयमा! दसविहा प० तंजहा-जणवय सच्चा, (१) सम्मयसच्चा (२) ठवणसच्च, (३) नाम सच्चा (४) रूव सच्चा, ( ) पडुच्च सच्चा (६) ववहार सच्चा (७) भाव सच्चा (८) जोग सच्चा (९) ओवम्म सच्चा, (१०) जणवय सम्मत ठवणा नामे रूवे पडुच्च सच्चेय ववहार भाव जोगे दसमे ओवम्म सच्चेय।

व्याख्या—पज्जत्तिया भंते! इत्यादि भाषित नवर सत्या मृषा चेत्युक्त मत सत्या भेदाभिधानाय प्रश्नसूत्र—सच्चाए भंते! भासा पज्जत्तिया कइविहा पण्णत्ता, इति प्रश्नेऽत्र—भगवानाह—गोयमा! इत्यादि। "जणवय सच्च" इति तत्र जनपदमधिकृत्येष्टार्थ प्रत्यायकत्वेन जनपदतया व्यवहार हेतुत्वात् सत्या जनपदसत्या यथा—कोंकणादिषु पय पिच्चमित्यादि।, सम्मत सत्या या सकल लोक सम्मतत्वेन सत्यतया प्रसिद्धा कुमुद कुव ल्लय कमल नता मरसानासमानेऽपि पंकज संभवत्वे गोपाल जना अरविन्दमेव पंकज मन्यन्ते न कोषमित्यरविन्दे पंकजमिति सम्मत सत्या (२) स्थापनासत्या य तथा विध मकारादि विन्यास मुद्रा विन्यास चोपलाम्य प्रयुज्यते यथा एकक पुरतो बिन्दुद्वयसहितमुपलभ्य शतमिदमिति, बिन्दुत्रय सहित सहस्रमिदमिति, तथा तथा । ध मुद्रादि यन्मुपलाभ्य मृत्तिकादिषु मासाय कार्षापणोऽयमिति (३) तथा नामत सत्या नाम सत्या यथा कुलमवर्द्धयन्नपि कुल वर्द्धन इति, (४) तथा रूपतः

सत्यो रूप सत्या, यथा दम्मतो गृहीत प्रव्रजित रूप प्रव्रजितोऽयमिति, (५) तथा प्रतीत्य—आश्रित्य वस्त्वन्तर सत्या प्रतीत्य सत्या, यथा अनामिकाया कनिष्ठामधिकृत्य दीर्घत्व, मध्यमा मधिकृत्य ह्रस्वत्व, नच वाच्य कथमेकस्या ह्रस्वत्व-दीर्घत्व च तात्विक ? परस्परविरोधादिति, भिन्न निमित्तत्वेन रोधाऽसम्भवात् , तथाहि तामेव—यदि कनिष्ठ मध्यमा वा एकामगुलिमधिकृत्य ह्रस्वत्व दघत्व च प्रतिपाद्येत ततो विरोध सम्भवेत् एकनिमित्त परस्परविरुद्धकार्यद्वयासभवात्, यदात्वेकामधिकृत्य ह्रस्वत्वमपरामधिकृत्य दीर्घत्व तदा सत्याऽस्वयाख भिन्न निमित्तत्वात्परस्पर विरोध, अथयदि तात्विके ह्रस्वत्वदीर्घत्वे तत ऋजुत्ववक्रत्वे इव कस्मात्ते परनिरपेक्षे प्रतिभासेत ? द्विविधाहि वस्तुनो धर्मा — सहकारि व्यग्य रूपा इतरेच,, तत्रये सहकारि व्यङ्ग्यरूपास्ते सहकारि सम्पर्कवशात्प्रतीतिपथमायान्ति, यथा पृथिव्या जल सम्पकतो ग ध, इतरेत्वेवमेवयथा यथा कर्पूरादि ग ध, ह्रस्व व दीर्घत्वे अपि च स०कारि व्यग्य रूप, ततस्ते सहकारिणमासाद्या भि व्यक्तिमायात इत्यदोष, (६) तथा व्यवहारो-लोकविवक्षा व्यवहारत सत्या व्यवहार-सत्या यथा गिरिदह्यते, गलति भाजन अनुदरा कन्या अलोमिका एडका, लोकाहि-गिरिगततृणादि तृणादिना सह गिरेरभेदविवक्षित्वा गिरिदह्यते इति ब्रु वन्ति, भाजनादुदके गलति उदकभाजनयारभेद विवक्षित्वा गलति भाजन मिति, सम्भोगजगर्भोदराभावे अनुदरा इति, लवनयोग्य लोमाभावेऽलोमिकेति, ततो लोक व्यवहारमपेक्ष्य साधरवि तथा ब्रु वता भाषा व्यवहारसत्या भवति, (७) तथा—भावो वर्णाद—भावेन सत्या भाव सत्या, किमुक्त भवति ? यो भावो वर्णादियस्मिन्नुत्कटो भवति तेन या सत्या (श्रु) भावसत्या, यथा सत्यपि प

(१) जनपदसत्य- जिस देश में जिस अर्थ के लिए जिस शब्द की प्रवृत्ति हो उसी अर्थ के बोध के लिए उसी शब्द का उच्चारण करना जनपद सत्य कहलाता है। जैसे कोंकणादि देशों में पय को पिच्च कहते हैं। इसका भाव यह है कि जिस देश में जिस अर्थ के लिये जो शब्द प्रचलित हो उसी अर्थ के लिये उसी देश में उस शब्द का उच्चारण करना सत्य कहा जाता है। तात्पर्य कि अपने २ देश की भाषा सत्य कही जाती है, इसी का नाम जनपद सत्य है।

(२) सम्मतसत्य- जो लोक की सम्मति से प्रवृत्ति की गई हो अथवा लोक में उस शब्द से किसी विशेष अर्थ का बोध हो उसे सम्मत सत्य कहते हैं यथा पंकज या अरविंद कमल यद्यपि पंक नाम कीचड़ से उत्पन्न होने वाले हर एक पदार्थ को पंकज कहा जा सकता है इस प्रकार पंक—कीचड़ में से उत्पन्न होने वाले मेंढक को भी पंकज कह सकते हैं तथापि जनता में पंकज शब्द का अर्थ कमल ही प्रसिद्ध है इसलिये कमल मात्र के लिये पंकज शब्द का प्रयोग करना सम्मत सत्य कहा जाता है कारण जो

सम्मत सत्यका श्रुत्वोक्त तथा यथा —सम्मत [illegible] [illegible] [illegible] तत्र [illegible] विषन्ति [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] (९) [illegible] [illegible] यथा [illegible] (१०) [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible]।

शब्द जिस अर्थ में सर्व लोक सम्मत हो रहा हो उस अर्थ के लिये उस शब्द का उच्चारण करना सत्य ही है।

(३) स्थापनासत्य—जिस वस्तु की स्थापना जनता में प्रसिद्ध हो उसको स्थापना सत्य कहते हैं। जैसे अंकादिविन्यास तथा मुद्राविन्यास। यथा—एक के आगे एक बिन्दु हो तो दस, दो हों तो सौ, तीन हों तो सहस्र इत्यादि। मुद्राविन्यास—जैसे मृत्तिकादि के किसी अंश विशेष में माशा और तोला आदि का विन्यास अर्थात् यह माशा है यह तोला है इत्यादि, तथा राजकीय अंक-विन्यास सर्व स्थापनासत्य में परिगणित किये जाते हैं यथा—वर्तमान समय में प्रचलित नोट आदि।

(४) नामसत्य—गुण निष्पन्न न होने पर भी उस नाम से प्रसिद्ध एवं आमन्त्रित किया जाना नाम सत्य है, जैसे कुल-वर्द्धक न होने पर भी कुलवर्द्धन, अविद्वान-अनपढ होने पर भी विद्यासागर लक्ष्मी न होने पर भी लक्ष्मीपति तथा सूर्य का कोई गुण भी न रहने से सूर्यप्रकाश एवं धर्म से सदा विमुख रहते हुए भी धर्मपाल इत्यादि गुण रहित संज्ञाएँ नाम-सत्य मे परिगणित होती हैं।

(५) रूपसत्य—जिस व्यक्ति ने जो रूप धारण किया हुआ है उसमें उस रूप-वेष के अनुसार गुण न होने पर भी केवल रूप-वेष के कारण उसको उसी नाम से सम्बोधित करना रूप-सत्य कहलाता है, जैसे लोक में साधु के गुण न होने पर भी केवल साधु के वेष को देखकर यह साधु आ रहा है ऐसा व्यवहार होता है इसकी गणना रूपसत्य में की गई है।

(६) प्रतीत्य सत्य—अपेक्षा से कहा जाने वाला सत्य प्रतीत्य सत्य कहलाता है, जैसे कि यह दीर्घ है, और यह लघु, एवं यह बड़ा पुत्र है और यह छोटा इत्यादि। परन्तु यह लघु दीर्घ अथवा छोटा बड़ा दोनों प्रकार का व्यवहार अपेक्षाजन्य है जो अनामिका अंगुली को कनिष्ठिका की अपेक्षा से बड़ी और मध्यमा की अपेक्षा से छोटी कहा जाता है। इसी प्रकार विनीत अविनीत, निर्धन और धनवान इत्यादि संसारगत जितना भी वचन व्यवहार है वह सब अपेक्षाजन्य होने से प्रतीत्य-सत्य में परिगणित होता है।

(७) व्यवहार सत्य—जो भाषा लोक व्यवहार में प्रचलित हो और लोग उसी प्रकार बोलते हों तब उसके बोलने में कोई दोष नहीं अर्थात् वह व्यवहार-सत्य है। यथा-ग्राम आ गया, स्टेशन आ गया तथा कूप चलता है, पर्वत जलता है, एवं यह रास्ता अमुक स्थान को जाता है इत्यादि भाषाओं को व्यवहारसत्य में स्थान दिया गया है।

(८) भावसत्य—पदार्थ में जिसवर्ण की उत्कटता हो उसी वर्ण के नाम से उसको सजीव अथवा अजीव को सम्बोधित करना भावसत्य है, जैसे बलाका पक्षी में पाचों वर्ण होने पर भी श्वेत वर्ण की उत्कटता के कारण बलाका श्वेत है ऐसा कहा जाना एवं काक कृष्ण है और तोता हरा है इत्यादि प्रकार वचन प्रयोग भावसत्य कहे जाते हैं।

६-योगसत्य—जिस वस्तु के साथ जिसका योग-संबंध हो रहा हो उस समय उसको उस सम्बन्ध से आमन्त्रित करना

योगसत्य कहलाता है। यथा–अरे घोडे वाले, तांगे वाले, या छतरी वाले इत्यादि वाक्य प्रयोगों मे अपरिचित व्यक्ति को घोडे आदि के सम्बन्ध से बुलाने की जो प्रथा प्रचलित है उसकी गणना योगसत्य मे है।

१०–औपम्य सत्य—यह तालाब समुद्र की तरह भरा हुआ है, यह कन्या चन्द्रमुखी है, इस पुरुष का तेज सूर्य के समान है, इत्यादि उपमाओं से किसी पदार्थ को उपमित करना औपम्यसत्य कहलाता है।

सर्वज्ञ देव ! सभी श्रेष्ठ पुरुष मेरी उपासना करते हैं इतना ही नहीं किन्तु उनकी श्रेष्ठता मेरे ही स्वाधीन अर्थात वे मेरी ही महिमा से श्रेष्ठ बने हुए हैं, जो व्यक्ति पूर्णरूप से सत्य का पक्षपाती है उसकी देवता तक भी रक्षा करते हैं। यावन्मात्र विद्याएं हैं वे सब सत्य मे ही प्रतिष्ठित हैं। सब विद्याओं में सत्यवादी ही सफलता प्राप्त कर सकता है तथा स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति एक मात्र सत्य के ही आश्रित है।

प्रभो ! समस्त आगमों और प्रवचनो मे मेरा गुणों का व्याख्यान है। मैं सर्व स्थानो मे पूजी जाती हूं, सभी सज्जन पुरुष मेरा सत्कार करते हैं, विद्यालयों में छात्रों के प्रति शिक्षा रूप मे मेरा ही स्वरूप सत्यभाषण रूप प्रदर्शित किया जाता है। अधिक क्या कहूँ मैं तीनों लोक मे संस्तुत हो रही हूँ, मेरे द्वारा मुनि जन अद्भुत शक्तियें उत्पन्न करके इस जगत् को विस्मित कर रहे हैं। मेरा शासन अटल है। और यह सबका रक्षक है। जगत् वत्सल !

मुझे इस बात का अत्यन्त हर्ष है कि सबमे अधिक आप श्री ने मुझे अपनाया और मेरा सम्मान किया है, द्वितीय महाव्रत की रक्षा के लिये आप श्री ने मेरा ही उपयोग किया है। पाच समिति में रहने को तो मुझे दूसरा स्थान प्राप्त है परन्तु वहा प्रधान पद मुझे ही प्राप्त है। आप श्री को लोग सत्य की मूर्ति कहते हैं। यह सुनकर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता होती है इसमे मेरा ही गौरव बढ़ता है। भगवान्! आपने फर्माया है कि सत्य भाषण पूर्ण समाधि है, अत सर्व प्रथम आप मेरे विषय मे ही कहने की कृपा करें?

प्रभो! अब मैं अधिक कुछ न कहती हुई अपना स्थान ग्रहण करती हूँ। जिस प्रकार सूर्य अपने प्रकाश की प्रशंसा नही करता किन्तु लोग स्वयं उसकी प्रशंसा करते हैं, इसी प्रकार मैंने कभी भी अपनी प्रशंसा नहीं की परन्तु मेरे विषय में आपने जो कुछ बयान किया है उसीका मैंने यहा पर दिग्दर्शन कराया है, मुझे प्रसन्नता है कि उपस्थित परिषद् ने मेरे भाषण को बड़ी शान्ति से श्रवण किया, अस्तु अब मैं अपने भाषण को समाप्त करती हूँ।

असत्य भाषा --

इस प्रकार पहली कन्या-सत्य भाषा-का भाषण हो चुकने के अनन्तर कृष्ण वर्णी की दूसरी कन्या-असत्यभाषा ने भगवान् के सन्मुख होकर नम्रता पूर्वक अपना भाषण इस भांति आरम्भ किया--

भगवन! मेरा नाम असत्य भाषा है, मेरा शारीरिक वर्ण और वस्त्रों को देखकर जो लोग विस्मित हो रहे हैं वे मेरे व्यापक

स्वरूप को जानकर तो और भी चकित होंगे। मालूम होता है अभी तक इनको मेरे प्रभाव का परिचय नहीं मिला। प्रभो! मेरी बड़ी बहिन-सत्यभामा-की गर्वीली बातें सुन कर मुझे बड़ा खेद हो रहा है, तथा जनता में होने वाले उसके सत्कार को देखकर तो मुझे उस पर अधिक से अधिक रोष आता है। इस लिये मैंने तो यही निश्चय किया है कि जहां तक हो सके इसका विरोध करूं और हर समय इसके विपक्ष में ही बोलूं, ताकि संसार में इसका बढ़ा हुआ सत्कार कम हो जावे और अधिक से अधिक लोग इसके स्थान में मुझे ही अपनाने का यत्न करें। इसी उद्देश से मैंने इसके नाम पर ही अपना शासन चलाना आरम्भ कर दिया है। लोग नाम तो इसका सुन कर आते हैं परन्तु काम वहां मैं करती हूं यथा-जब कोई व्यक्ति-जिसपर मेरा प्रभाव पड़ चुका है जनता के समक्ष इस प्रकार कहता है कि भाइयो! मैं तुम से सत्य कहता हूं, तुम ध्यान देकर सुनो? तब वह, सत्य के नाम से मेरा ही वर्णन करने लग जाता है। कारण कि उस वर्णन में मेरे स्वरूप को व्यक्त करने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं होता। अर्थात् उस वर्णन में सत्य का कहीं लेश भी नहीं होता।

भगवन्! कहीं पर तो मैं प्रकट रूप से भी शासन करती हूँ परन्तु गुप्त रूप से तो मेरा सभी जगह पर शासन चल रहा है! प्रभो! यह ठीक है कि आपने सर्व प्रकार से इसे ही-सत्य को ही-अपनाया हुआ है! और यह भी यथार्थ है, सत्य की [illegible] प्रतिमा हैं! आपके आत्म [illegible]

ओत प्रोत हैं, और इसके विपरीत मुझे तिरस्कार करके बहिष्कृत कर रखा है, परन्तु अनन्य भक्ति के कारण अथवा आप श्री की परम दयालुता के कारण मैं आपके दरबार से सर्वथा त्यागी नहीं गई ? किसी न किसी रूप में मुझे आपने आश्रय दे ही रक्खा है फिर वह चाहे किसी दृष्टि से हो और चाहे कितना ही क्षुद्र हो। मुझे तो इसीमें बड़ा आनन्द है कि मुझे भी आपके यहां स्थान प्राप्त है यथा-आपने फरमाया है कि ईश्वर जगत्कर्ता है, और पर आत्मा सर्व व्यापक है इत्यादि कथन असत्य होने पर भी मात्र अन्य दार्शनिकों के सिधान्त को दिखलाते हुए आपके द्वारा कहा गया है।

भगवन्! मुझे तो अपनी इस बड़ी बहिन से द्वेष है। जो कुछ यह कहे मैंने उसके विरुद्ध करना है। यदि यह कहे कि व्यवहार नय से आत्मा कर्त्ता है तब इसके विपरीत मैं कहूँगी कि आत्मा कर्त्ता नहीं अपितु ईश्वर कर्त्ता है। तथा आत्मा को कर्त्ता न मानने वालों की संख्या बहुत अधिक है यह सब मेरा ही प्रभाव तो है। इसीसे तो मैं इससे बाजी ले जाती हूँ अर्थात् इसे परास्त कर देती हूँ। इसने कहा है कि धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय आकाश और काल ये छः द्रव्य हैं, इस पर मैं कहती हूँ कि नहीं द्रव्य नौ हैं, यथा-पृथिवी, जल,तेज, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन। इसने कहा है मुक्तात्मा का पुनरागमन नहीं होता अर्थात् मोक्ष हुए पश्चात् यह जीवात्मा फिर जन्म मरण रूप संसार चक्र में नहीं आता, और इसके विपरीत

म में रहती हूं अवश्य आता है, यदि न आए तो यह संसार ही एक न एक दिन खाली हो जावे। जहां केवल निकलना ही हो, आने का सर्वथा प्रतिरोध हो वहां खाल. हा जाने में क्या सन्देह! तथा यह कहती है-जीव अनन्त और प्रतिव्यक्ति भिन्न २ है। मैं कहती हूं नहीं, केवल एक ब्रह्म ही है अन्य सब कुछ उसीकी माया है यह कहती है संसार अनादि निधन है। मैं कहती हूं नहीं यह ईश्वर द्वारा रचा गया है। अतः आदी और सान्त है। इसने कहा है कि पांच भूत अन्य हैं और उनका चेतित करने वाला जीवात्मा अन्य है। मैं कहती हूं नहीं, पांच भूत ही जीवात्मा है उससे अलग उसकी कोई सत्ता नहीं। यह कहती है मध्यलोक में असंख्यात द्वीप समुद्र हैं, मैं कहती हूं नहीं मध्य लोक में तो केवल सात द्वीप और सात समुद्र बल्कि इससे भी कुछ न्यून हैं। यह कहती है सूर्य चालू और, पृथिवी स्थिर है, मैं कहती हूं नहीं सूर्य स्थिर और पृथिवी चलती है। इसका कथन है कि सिद्ध परमात्मा अरूपी और अशरीरी है मैं कहती हूं वह शरीर धारी पुत्र पौत्रों वाला भी है। यह कहती है कि आत्मा उपयुक्त साधन के द्वारा सर्वज्ञता-लाभ कर सकता है अर्थात् सर्वज्ञ हो सकता है, मैं कहती हूं कि सारा सर पटकने पर भी वह अल्पज्ञ ही रहता है। यह कहती है मोक्ष कर्मक्षय का परिणाम है। मैं कहती हूं वह शुभ कर्म का फल है यह कहती है मृतक के निमित्त दिया गया दान उसको नहीं मिलता, मैं कहती हूं अवश्य मिलता है। जिस प्रकार लैटरबक्स में डाला हुआ पत्र जिसके नाम का हो उसे मिल जाता है उसी प्रकार ब्राह्मणवर्ग के पेट में डाला

हुआ अन्न जल उसे अवश्य पहुंचता है इसमें सन्देह की कौन सी बात है। यह कहती है—पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति सजीव हैं अर्थात् उनमें जीवात्मा की स्थिति है, मैं कहती हूँ यह बिलकुल भ्रम और उन्मत्त प्रलाप है। यह कितनी असंगत बात है कि पृथिवी आदि नितान्त जड़ पदार्थ भी सजीव हैं। यह कहती है कि मनुष्यों को ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये और तृष्णा का निरोध करके सन्तोष धारण करना चाहिए। मैं कहती हूँ नहीं, संसार बनाया ही इसलिए है कि प्रत्येक प्राणी अपनी इच्छानुसार काम करे, ये सब इन्द्रियें इसलिए तो हैं यदि विषय भोगों का इनके द्वारा यथेष्ट उपभोग नहीं करना तो इनकी आवश्यकता ही क्या थी। खाना पीना और विषय भोगों में मस्त रहना ही तो मानव जीवन का सार है। यह कहती है पशु पक्षी आदि किसी भी जीव का वध मत करो, मैं कहती हूं पशु बनाए ही यज्ञ के लिये हैं उनका यज्ञ के निमित्त वध करना सर्वथा निर्दोष है। अगर इसकी बात को मान कर इनका वध बन्द कर दिया जाय और इनके मांस का उपयोग करना छोड़ दिया जाय तब संसार इनसे ही भर जायगा, मनुष्यों को तो वहां बैठने को भी स्थान नहीं मिलेगा। वाह! क्या अच्छी बात है, जिनको विधाता ने केवल मनुष्यों के लिये ही पैदा किया हो उनको वे न खायें, कैसी बेसुरी बात है। अगर मांस न खाये तो बल कहां से लायें, मांस का त्याग करना मानो कमजोरी को आमन्त्रित करना है। फिर यह कहती है किसी से अन्याय मत करो, मैं कहती हूँ अवश्य करो, इसके बिना धन, सम्पत्ति, राज्य और वैभव आ ही नहीं सकता।

यह न्याय और अन्याय की बातें तो केवल पुस्तकों में सम्भाल रखने की हैं। साम्राज्य स्थापना के समय अथवा भोग विलास की सामग्री सम्पादन के समय इस ओर ध्यान देने की कोई आवश्यकता नहीं।

नाथ! इस बात का मुझे बड़ा ही खेद है कि आपने इस सत्य भाषा की भांति मुझे नहीं अपनाया, इतना ही नहीं बल्कि साधु के द्वितीय व्रत का सविस्तार वर्णन करते हुए मेरा बड़ा तिरस्कार किया है। मुझको सर्वथा त्याज्य बतलाकर और भी अधिक अपमानित किया है। इसी अपमान से सन्तप्त होकर ही मैंने आपके द्वारा वर्णन किये गए जीवादि पदार्थों की यथार्थता के विरोध में ३६३ मत खड़े कर दिये हैं। इसका फल यह हुआ कि उनके प्रभाव से प्रभावित हुई जनता आप ही से विमुख हो गई। और मेरे सत्कार में संलग्न होकर सत्पथ से गिर कर असत् पथ में जा थमी। आप तो संसारी जीवों का कल्याण चाहते हैं परन्तु मैं इन्हें संसार में ही स्थिर रखना चाहती हूँ। अस्तु अब मेरे उपासकों की ओर भी जरा दृष्टि डालिये। पापी असंयती, अव्रती, कपटी, कामी, क्रोधी, लोभी, ठग, चोर, जुवारी तथा भययुक्त, उपहास करने वाले, राजकर्मचारी, कारागृह के संरक्षक, कूट तोल और कूट माप रखने वाले दुकानदार, खोटा सिक्का बनाने वाले, पटकारक (जुलाहे), कलाद (सुनार), छीपे, गुप्तचर, भाट, चारण नगरगुप्तक (थानेदार वगैरह) और चुगलखोर इत्यादि सब मेरे उपासक हैं, ये रात दिन मेरी ही आराधना में लगे रहते हैं, इससे अधिक मेरा और क्या प्रभाव हो सकता है, मेरी इस बहिन-

के मुकाबले में मेरा कितना प्रभाव है इसका निर्णय तो बहुत ही सहज है। मेरे और इसके उपासकों का विभाग कर दीजिये फिर देखा जिसके भक्तों की संख्या अधिक है। एक ग्राम को ही ले लीजिये। उसमें इसका भक्त तो मुश्किल से कोई एक आध ही निकलेगा बाकी सब के सब मेरी ही उपासना करते हुए दृष्टि गोचर होंगे। क्या यह मेरा कम प्रभाव है?

भगवान! इसका कहना है कि संसार में आस्तिकवाद मुख्य है इसीकी प्रधानता है, पर कि मैं कहता हूं नहीं, संसार में तो सर्वत्र नास्तिकता का ही साम्राज्य है चारों ओर उसीकी विजय दुन्दुभी बज रही है। जिधर देखो उधर प्राय यही सुनाई देता है कि आत्मा कौति कुछ नहीं, परलोक की मान्यता निरा ढकोसला है, न पुण्य है न पाप यह शरीर ही सब कुछ है, इसके अतिरिक्त किसी आत्मा आदि पदार्थ का स्वीकार करना नितान्त मूढता है, शरीर ही सब कुछ है, इसको पुष्ट रखना ही परम पुरुषार्थ है मरने के बाद न कोई आता है और न जाता है, शरीर का नाश ही आत्मा ही मोक्ष है, संसार की वृद्धि करना, शरीर को सुन्दर और बल वान बनाकर उसके द्वारा विषयों का यथेष्ट उपभोग करना ही जीवन का एक मात्र सार है। इत्यादि इत्यादि। वास्तव में देखा जाय तो नरक और स्वर्ग यह केवल कल्पना किये गये पदार्थ हैं, इनकी स्वतन्त्र कोई सत्ता नहीं, तथा माता पिता और गुरु आदि की सेवा के लिये प्रेरणा करना भी एक प्रकार का स्वार्थ पूर्ण व्यवहार है। माता पिता की सेवा का भार हम पर क्यों? हमें

उनसे क्या देना है ? क्या हमने उनको अपने जन्म के लिये कभी बाधित किया था ? यदि नहीं, तो फिर हम पर उनकी देन क्या ? यह तो कामदेव का विलास मात्र है किसी से किसी को अमुक प्रकार की सेवा की इच्छा रखना कुछ अर्थ नहीं रखता। इस प्रकार के उच्छृंखल भाषणों में मेरा ही प्रभाव काम कर रहा है।

भगवन् ! अब जरा आस्तिक्यवाद में भी मेरे छिपे हुए प्रभाव को देखिये !—

आत्मा और परलोकादि में विश्वास रखने वाला आस्तिक वर्ग भी अपनी मन कल्पित मान्यता के प्रचार में लगा हुआ है। किसका कथन सुनिये ? यह संसार अंड से उत्पन्न हुआ है। अथवा ब्रह्मा जो कि विष्णु के नाभि कमल से उत्पन्न हुए हैं, इसके निर्माण-कर्त्ता हैं। अथवा यूं कहिये कि इस संसार को प्रजापति-ईश्वर ने रचा है। इसके विपरीत किसी की मान्यता में आत्मा अकर्त्ता और सर्वथा निर्लेप है, संसार की रचना का भार केवल प्रकृति पर ही है, किसी के कथनानुसार ईश्वर की इच्छा से पृथ्वी आदि के परमाणुओं में क्रिया उत्पन्न होकर परमाणु आदि क्रम से इस सृष्टि का आरम्भ होता है। किसी के मत में, यह जगत प्रकृति का परिणाम और ब्रह्म का विवर्त है। कोई ईश्वर को निमित्त और कोई अभिन्न निमित्तोपादान कारण मान रहा है, यहां तक कि अजातवाद, आरम्भवाद, परिणामवाद और विवर्तवाद आदि अनेक मानववादों का आस्तिक वर्ग में प्रचलित होना मेरी ही का फल नमार प्रभाव है "सभी सर्वत्र"

कर रही है। अ ायएक मात्र काल ही जगद्रचना में हेतुभूत है, यह निराश्रय प्रसिद्ध है। यह सब मेरा ही बिछाया हुआ मेरा जाल है।

भगवन्! कहां तक कहूँ, जिधर देखो उधर मेरा ही आधिपत्य है। गर्भपात, भ्रूणहत्या, और विश्वासघात आदि निन्दनीय कर्मों में मदद मेरा ही हाथ है। चुगलखोरी, कन्याविक्रय, धोखा प्रहार, अमानत में खयानत इत्यादि जघन्य कार्यों में जनता को प्रवृत्त करा देना मेरे बायें हाथ का करतब है। आगम आगमों में मेरे स्वरूप का पूरा २ निरूपण उपलब्ध होता है, देखने की इच्छा रखने वाले प्रश्नव्याकरण के दूसरे अध्ययन को पढ़ें।

अपनी बड़ी बहन की गर्वीली बातें सुन कर मुझे तो हँसी आती है, इसे यह पता नहीं कि आजकल जनता में इसका कुछ भी गौरव नहीं इस बेचारी को तो आजकल कोई पूछता तक नहीं, मात्र इने गिने पुरुष हैं जो इसका स्वागत करते हैं इन अंगुलियों पर गिने जाने वाले व्यक्तियों को छोड़कर बाकी के सब जनों पर तो एक मात्र मेरा ही अधिकार हो रहा है। इस पर भी यह विलक्षणता है कि प्रत्येक कार्य में नाम इसका लिया जाता है और काम मेरा बनता है।

भगवन्! मैं अपनी बहन से किसी प्रकार भी कम नहीं हूँ इसकी भांति मैं भी संसार में दस प्रकार से ही व्यक्त की जाती यथा-१ क्रोधनिसृता २ माननिसृता ३ मायानिसृता ४ लोभनि सृता ५ प्रेमनिसृता ६ द्वेषनिसृता ७ हास्यनिसृता ८ भयनिसृ

ग्राम में लाना और पाठ से उसको लूटना और ...के संकटों में डाल कर स्वयं प्रसन्न होना इत्यादि लीलाएँ हैं। अधिक क्या विश्वासघात, मित्रद्रोह ...क अन्य कार्य मेरे ही द्वारा सम्पन्न होते हैं।

मृता—लोभ के वश होकर यह मनुष्य जितने हैं उन सब में मेरी ही प्रेरणा काम करती है। ...प करने का यत्न करना, किसी के घर हुए धाम ... में रख कर मुकर जाना और मारण मोहन ...त्रिक क्रियाओं में प्रवृत्त होना इत्यादि जितने ...धन्य काम हैं उनमें मेरी ही अभिव्यक्ति है।

...ता—जिस समय इस जीव में काम रागाग्नि की ... तब उसकी पूर्ति के लिए वह पर स्त्री में मुग्ध ...करता है। यथा—मैं तुम्हारा हर प्रकार से आज्ञा ... और किंकर हूँ, तुम्हारे कठोर वचन भी ...ल प्रतीत होते हैं इत्यादि अनेक प्रकार के अनुराग प्रकट करता हुआ कामी पुरुष की जिह्वा ...है। इसके ... असत्य प्रतिज्ञा और ...ा विश्वास ... अनेक पालक और

(१) क्रोधनिसृता—जब कोई व्यक्ति क्रोध के वशीभूत हो जाता है तब मैं उस पर पूर्ण अपना प्रभाव जमाती हूँ यदि क्रोध में आकर कोई व्यक्ति सत्य भी कहता है तो मैं अपने प्रभाव से उसे भी असत्य बना देती हूँ। जैसे पुरुष द्वारा किया गया दुग्धपान, अपने रूप रंग को छोड़ पुरुष के भीतर जाकर हुए मूत्रादि के रूप में बदल जाता है वैसे ही क्रोधी पुरुष यदि सत्य भी कहे तो भी मैं उसे सत्य नहीं रहने देती। इसीलिए मुझे क्रोध-निसृता कहा है।

( ) माननिसृता—अहङ्कार के वशीभूत हुए पुरुष में मैं अपने अनेक प्रकार के रूप दिखाती हूँ। जैसे कि—मैं अमुक व्यक्ति को क्या समझता हूँ, वह तो मेरे जूते की भी होड़ नहीं कर सकता मेरा ऐश्वर्य, मेरी विद्या मेरी जाति मेरा कुल और मेरी शक्ति की बराबरी कौन कर सकता है इत्यादि अभिमान-पूर्ण गर्वोक्तियों में मेरा ही हाथ है। सर्वगुण-सम्पन्न, गौरवान्वित व्यक्ति को भी तुच्छ बना डालना मेरे लिए एक साधारण सी बात है। इसी प्रकार साधु को असाधु और असाधु को साधु धनी को निर्धन और निर्धन को धनी, पण्डित को मूर्ख और मूर्ख को पण्डित कह देना मेरे बाँये हाथ का खेल है। मुझे माननिसृता कहने का यही तात्पर्य है क्योंकि मेरा इसमें निवास है।

(३) मायानिसृता—सब से अधिक मेरा प्रकाश माया में होता है, दूसरों को छलने के लिये मैं ही काम आती हूँ, अनेक प्रकार के छल कपट करके अपना तुच्छ-व्यक्ति को विश्वास का पात्र बनाने में मैं ही अग्रसर होती हूँ। मित्र बन कर सज्जना दि[illegible]

हर किसी को विश्वास में लाना और पीछे से उसको लूटना और इस अनेक प्रकार के संकटों में डाल कर स्वयं प्रसन्न होना इत्यादि सब मेरी ही तो लीलाएँ हैं। अधिक क्या विश्वासघात, मित्रद्रोह और इसी प्रकार के अन्य कार्य मेरे ही द्वारा सम्पन्न होते हैं।

(४) लोभनिसृता—लोभ के वश होकर यह मनुष्य जितने भी अनर्थ करता है उन सब में मेरी ही प्रेरणा काम करती है। पर सम्पत्ति को हड़प करने का यत्न करना किसी के घर हुए यास (अमानत) को घर में रख कर मुकर जाना और मारण मोहन वशीकरणादि तान्त्रिक क्रियाओं में प्रवृत्त होना इत्यादि जितने भी लोभ-प्रभव जघन्य काम हैं उनमें मेरी ही अभिव्यक्ति है।

(५) प्रेमनिसृता—जिस समय इस जीव में काम रागाग्नि की आसक्ति बढ़ती है तब उसकी पूर्ति के लिए वह पर स्त्री के मुख मेरा ही उपयोग करता है। यथा-मैं तुम्हारा हर प्रकार से आज्ञाकारी हूँ, दास हूँ, सेवक और किंकर हूँ, तुम्हारे कठोर वचन भी मुझे फूल जैसे कोमल प्रतीत होते हैं इत्यादि अनेक प्रकार के मृदु भाषणों द्वारा अनुराग प्रकट करते हुए कामी पुरुषों की जिह्वा में मेरा ही निवास है। इसके अतिरिक्त असत्य प्रतिज्ञा और असत्य सौगन्धों पर विश्वास दिलाकर मैंने अनेक बालक और बालिकाओं के जीवन नष्ट-भ्रष्ट कर दिये हैं।

(६) द्वेषनिसृता—द्वेष के आवेश में आकर मैं सत्य प्रतिज्ञ और सूर्य के समान प्रतापी पुरुषों के मुख में भी अधिक से दुर्गन्धित वचन सहसा डालती हूँ। गुणवान परोपकारी

पुरुषों को कपटी, विश्वासघाती और दुराचारी कहला देना तो मेरे लिए बिलकुल साधारण सी बात है।

(७) हास्यनिसृता—हास्य से प्रभावित होकर तो मैं ऐसी बातें सुनाती हूँ जो किसीने जीवन भर में भी न सुनी हों। तथा हास्य हास्य में ही किसी सम्भावित व्यक्ति को निर्लज्ज, धूर्त और अनाचारी बना देना तो मेरे लिए बहुत ही सहज है।

(८) भयनिसृता—चोरी आदि के सम्बन्ध में व अन्य किसी विशिष्ट अपराध में पकड़ा गया पुरुष मेरी ही शरण लेता है जिस समय वह गिड़गिड़ाता हुआ कहता है, हुजूर मैंने कुछ नहीं किया मुझे पकड़ कर लाने वाले पहले ही मेरे दुश्मन हैं आप मां बाप के सामने मैं जो कुछ कहता हूँ वही यथार्थ है, इत्यादि सम्भाषण में मैं ही तो बोल रही हूँ।

(६) आख्यायिकानिसृता—उपन्यास लिखते समय परस्पर के प्रेम पाश में बन्धे हुए युवक युवती विरह के चिन्तन में तथा दूर बैठे हुए प्रेमी के अपनी प्रेमिका पर लिखे हुए पत्र में उपयुक्त होने वाली वचनावलि में सिवा मेरे और किसकी प्रेरणा है। तथा उस लतावली को पढ़ने वाले युवक युवतियों के हृदय में हलचल सी मचा देना यही मेरा प्रभाव है। वस्तुतः उपन्यासादि ग्रन्थों में मेरे स्वरूप का ही यथार्थचित्रण है।

किसी के ... मेरे
साधारण सी

मेरे द्वारा कलंकित किये जाने पर जीवन से ही हाथ धो बैठते हैं।

भगवन्! कहां तक वर्णन करूं, आजकल की जनता तो मुझे पग पग पर अपना रही है। क्या छोटा और बड़ा, क्या धनी और निर्धन तथा विद्वान् और मूर्ख सब मेरी ही उपासना में लगे हुए हैं। क्या यह मेरा कुछ कम प्रभाव है।

प्रभो! एक बात और है जिसका जिक्र करना मैं भूल गई हूँ वह है मेरी अत्यंत प्यारी सहेली माया की बात, माया या मुझे हरन महारा है वह मेरे हरएक काम में मेरी पूरी २ सहायता करती है जो काम मुझ से नहीं बन पाता उसे वह मद से बना देती है और मैं उसे जहां भी भेजूं वहीं वह सफलता प्राप्त करती है इसलिए मैं उसकी कृतज्ञ हूं। ऐसी सहेली के लिए मैं जितना गर्व कर सकूं उतना कम है।

नाथ! आपने मुझे नहीं अपनाया सो तो ठीक परन्तु आपके सजातीय वर्ग में (जीव वर्ग में) तो मुझे स्थान मिल ही रहा है अतः आप से साक्षात नहीं तो दूर का सम्बन्ध तो बना हुआ ही है। सामान्य जीवों में मेरा जो मौलिक सम्बन्ध है उसका विच्छेद यदि असम्भव नहीं तो दुस्तर अवश्य है। इस जीव-समुदाय में कतिपय जीवों में तो मेरा चिरन्तन सम्बन्ध है परन्तु वह एक न एक दिन टूट जाने वाला है और कितने एक ऐसे जीव (अभव्य) भी हैं जिनके साथ मेरा अनादि निधन-कभी न टूटने वाला सम्बन्ध है। चेतनता के नाते आपके सजातीय है

श्री के चरणों में एक विशिष्ट स्थान प्राप्त है तो कुछ अनुचित नहीं होगा।

भगवन्! जैसे कि मैंने पहिले कहा है—मैं कतिपय जीवों के साथ अनादि अनन्त सम्बन्ध से सम्बधित हो रही हूँ और मेरी इस बड़ी बहिन का सबंध तो अपेक्षाकृत सादिसान्त ही देखने में आता है। पहले तो कतिपय जीव ही इसे अपनाते हैं और जो अपनाते हैं वह पहले तो इसका बड़ा स्वागत करते हैं रात दिन इसी के अराधन मे व्यतीत करते हैं, इस प्रकार इसको पूर्ण विश्राम में लाकर अन्त मे इसका परित्याग कर देते हैं। तात्पर्य कि निर्वाण-प्राप्ति के समय वचन योग का पूर्ण निरोध करके अभाविक हो कर परमधाम कैवल्य पद को प्राप्त कर लेते हैं। उस समय इस विचारी का यहां नाम शेष भी नहीं रहता इससे सिद्ध हुआ कि संसारी जीवों के साथ मेरी स्थिति की परम्परा अनादि अन्त ही है और इसकी सादि अथच शान्त है। फिर आप ही बताइए कि हम दोनों में अधिक व्यापक और अधिक प्रभावशालिनी कौन? यह तो मैं बारबार कह चुकी हूँ कि संसार में मेरे भक्त इसकी अपेक्षा बहुत अधिक हैं। मैं तो संसारी जीवों को नरक तिर्यक देव और मनुष्य योनियों में भ्रमण कराने में ही लगी रहती हूँ परन्तु विपरीत इसके मेरे साथ में विलक्षण बन कर यह उन्हें जीवों को निर्वाण की ओर धकेलने का यत्न करती है, तब आप ही कहिए कि मेरा इसकी कैसे निभ सकती है? अन्त अब मैं आप श्री से क्षमा की प्रार्थना करती हुई अपना

ग्रहण करती हूं। तथा उपस्थित श्रोतागण से आशा करती कि व भी मुझे क्षमा करेंगे, और अपने भाषण को समाप्त रती हूँ।

सत्यामृषा—सत्य और झूठ से मिली हुई मिश्र भाषा का भिभाषण—

इसके अनन्तर सोलह वर्ष की तीसरी कुमारिका युवावस्था पदार्पण करती हुई श्वेत कृष्ण और पीत वर्ण के वस्त्रों से लंकृत होकर अपने असाधारण रूप लावण्य से उपस्थित जनता मुग्ध करती हुई भगवान् के चरण-कमलों में उपस्थित होकर प्रकार बोली—

भगवन्! मेरा नाम मिश्र-भाषा है मैंने अपनी इन दोनों हनों के अभिभाषण को बड़े ध्यान से सुना है, मुझे तो इन दोनों ही हार्दिक प्रेम है। दोनों से ही मेरा घनिष्ट सहचार है, और नों भी मेरे से प्रेम रखती हैं इनका आपस में विरोध भले रहता हो परन्तु मेरे साथ तो इन दोनों का ही बहुत अच्छा ताव है। समय २ पर ये दोनों ही मेरी सहायता करती हैं और मी अपने आप को इन दोनों के आश्रित समझती हूँ। इसी ए मैंने आज तक कभी इनका विरोध नहीं किया और न मेरे विरोध करने की शक्ति ही है। मैं तो जैसे तैसे शान्त रहकर अपना जीवन व्यतीत करना उचित समझती हूँ।

भगवन! जैसा कि मैंने ऊपर बतलाया है मैं इन दोनों का आश्रय लेकर चलती हूँ। सम्भवतः आगमों में मुझे इसी अभिप्रा

मे अपर्याप्त भाषा पढ़ा है (१) मेरा अभिभाषण कुछ अस्पष्ट सा होता है, इसीलिये जनता उसके समझने में प्राय असमर्थ रहती है। यही कारण है कि अधिक लोग मेरा यथार्थ स्वरूप समझ नहीं पाते। वास्तव मे देखा जाय तो मेरी इन दोनों बहनों के जो शरीर हैं उनके आंशिक संमिश्रण से ही मेरा शरीर संघटित हुआ है। यदि संक्षेप मे कहूँ तो इन दोनों का संमिश्रण ही मेरा स्वरूप है, इस लिए मेरे अभिभाषण मे श्रोताओं का किसी निर्णय पर न पहुँचना कोई आश्चर्य की बात नहीं। मेरे अभिभाषण मे श्रोतागणों को प्रसन्न और अप्रसन्न करने की क्षमता कोई बात नहीं होती तथापि उसमे कतिपय तो प्रसन्न होते हैं, और बहुत से अप्रसन्न। भला इसमें मेरा क्या दोष, कारण कि मेरा तो स्वरूप ही इस प्रकार का है। उसमे सत्य और और असत्य दोनों हो संमिलित है। सज्जन भले ही मेरे से दूर रहते हो परन्तु यह अनुभव सिद्ध है कि मेरे दर्शन की लालसा तो किसी न किसी रूप मे उन्हें भी बनी रहती है। पैशुन्यता-चुगली आदि कार्यों के उपस्थित होने पर वे मेरी ही शरण में आते हैं और उन्हें उनके कार्य की सफलता के लिये वरदान देकर प्रसन्नता पूर्वक विदा करती हूं। मुझे तो यही बड़ी प्रसन्नता है कि इस संसार में बहुत से धनी मानी और प्रतिष्ठित गृहस्थों तक मे मेरा आदर है और

(१)—अपवत्तिया यॉ भत कह विरामा भासा प० सम्मा। दुनिहा प० त—सच्चामोसा असच्चा मोसाय, [प्रज्ञाप० भा० ११ सू० (१६५) पृष्ठ २५६]

वे मुझे हृदय से चाहते हैं।

मैं संसार में दस (१) रूपों में अभिव्यक्त हो रही हूँ यथा—

---

(१) सच्चा मोसा णं भंते ! भासा कतिविहा पन्नता ? गोयमा ! दस विहा पन्नता तं जहा—उप्पण्ण मिस्सिया (१) विगतमिस्सिया (२) उप्पण्णं विगत मिस्सिया (३) जीव मिस्सिया (४) अजीव मिस्सिया (५) जीवाजीव मिस्सया (६) अणंत मिस्सिया (७) परित्त मिस्सिया (८) अद्धा मिस्सिया (६) अद्धाद्धा मिस्सिया (१०)

व्याख्या—सत्यामृषा दशविधा, तद्यथा—'उप्पण्ण मिस्सिया" इत्यादि, उत्पन्ना मिश्रिता अनुत्पन्नैः सह संख्या पूरणार्थं यत्र सा उत्पन्न मिश्रिता, एवमन्यथापि यथा कस्मिंश्चित ग्रामे नगरे वा अनेकाधिकेषु वा दारकेषु जातेषु दशदारका अस्मिन्नद्य जाता इत्यादि (१) एवमेव मरण कथने विगत मिश्रिता (२) तथा जन्मतो मरणस्य च कृत परिमाणस्या मिधाने विगतादेन चोत्पन्न विगत मिश्रिता (३) तथा प्रभूतानां जीवतां स्तोकानां च मृतानां शंख शंखकादीनामेकत्र राशौ दृष्टे यदा कश्चिदेव वदति अहो महान् जीव राशिरयं मिति तदा सा जीव मिश्रिता, सत्यामृषात्वं चास्या जीवत्सु सत्यत्वात् मृतेषु मृषात्वात् (४) तथा यदा प्रभूतेषु मृतेषु स्तोकेषु जीवत्सु एकत्र राशी कृतेषु शंखादिस्वेवं वदति—अहो महानयं मृत जीव राशिरिति तदा सा अजीव मिश्रिता, अस्या अपि सत्या मृषात्वं मृतेषु सत्यत्वात् जीवत्सु मृषात्वात् (५) तथा तस्मिन्नेव राशौ एतावन्तोऽत्र जीवन्त एतावन्तोऽत्र मृता इति नियमे नाव धारयतो विसंवादे जीवाजीव मिश्रिता (६) तथा मूलकादिक मनन्त काय तस्यैव सत्के परिपांडु पत्रै

आपको सौ आवाज मारी होंगी आप फिर भी नहीं बोले इत्यादि।

(१०) अद्धाद्धा मिश्रिता—जैसे सूर्य के उदय मात्र होने पर भी कह देना कि शीघ्र चलो मध्यान्ह हो गया इत्यादि।

भगवन्! मेरा स्वरूप भी लोक व्यापी है। अनेक रूपों से मैं संसार में अपना कार्य कर रही हूँ तथा अनेक व्यक्ति मेरे सहारे पर जीवन व्यतीत कर रहे हैं उनमें ऋणी पुरुष मुख्य हैं लेनदार से अपना पल्ला छुड़ाने के लिये देनदार को मेरी ही शरण में आना पड़ता है। जिस समय साहूकार देनदार के पास आकर उससे अपना ऋण चुकाने को कहता है तब मेरी सहायता प्राप्त कर वह उत्तर देता है, "साहिब! आप चिन्ता न करें मैं अमुक दिन आपका ऋण अवश्य चुका दूँगा, आप घबराइये नहीं मुझे खुद ही बड़ा ख्याल है, आपका रुपया बहुत जल्दी पहुँचाने की कोशिश करूँगा।" लेनदार आने पर फिर इसी प्रकार का व्याज पूर्ण। बहाने बाजी के साथ) उत्तर देने इत्यादि कार्यों में मेरा ही प्रमुख प्रभाव है।

सत्य और असत्य भाषा के यथार्थ मात्र निदर्श हैं उनका संमिश्रण रूप से निर्देश करना मेरा काम है।

भगवन्! मेरी ये दोनों बहिनें उद्धत हैं मुझे इनकी उद्धतता अच्छी नहीं लगती। किसी व्यक्ति के विषय में अर्थात् उनके गुण दोष विवेचन में जब ये दोनों प्रवृत्त होती हैं तब इन दोनों का आपस में खूब विवाद होता है। एक दूसरी पर खूब चमकती हैं। एक कहती है यह व्यक्ति बहुत ही भला है तो दूसरी उसे

सर्वथा बुरा बतलाने लगती है। इनकी परस्पर की कलह को देख कर मैं तो यही कहना उचित समझती हूँ कि यह व्यर्थ का वाद विवाद निरर्थकप्राय है, हम में तो सब ही अच्छे हैं, वैसे तो सिवाय वीतराग के इस संसार में ऐसा कोई भी व्यक्ति उपलब्ध नहीं हो जिसमें कोई न कोई गुण अथवा दोष विद्यमान न हो।

सर्वज्ञदेव! मैं अभिमान तो नहीं करती, परन्तु यह अवश्य कहूँगी, इनका अनुयायीवर्ग-(सत्य और असत्य भाषी सभी जीव) तो मृत्यु की शरण जाते हैं जब कि मेरे सहचर मिश्र गुणस्थान में वर्त्तमान जीव मृत्यु का मुख नहीं देखता। अर्थात् उसमें किसी भी जीव की मृत्यु नहीं होती। यही मेरी विशिष्टता है। इसके अतिरिक्त मेरा प्रभाव भी इन दोनों से कम नहीं। जहां पर मेरा आधिपत्य होगा वहां पर किसी वस्तु का निर्णय नहीं हो सकता, सन्देहदोला में पड़ा हुआ व्यक्ति वर्षों व्यतीत होजाने पर भी किसी सुनिश्चित परिणाम पर नहीं पहुंच सकता। श्रद्धा-देवी के साथ मेरी बहुतअनबन है। मेरा जहां पर अधिकार होता है वहां मैं उसे फटकने नहीं देती।

नाथ! यही मेरा प्रभाव है। अस्तु, अब मैं आप श्री से अपना स्थान ग्रहण करने की आज्ञा मांगती हूँ। मेरे वक्तव्य में यदि किसी की प्रकार धृष्टता हुई हो तो उसके लिए मैं क्षमा चाहती हूँ।

असत्यमृषा—इस प्रकार सत्यमृषा नाम की तृतीया कुमारिका के बोल चुकने पर षोडशवर्षीया चौथी कुमारिका ने प्रभु के आदेश से अपना भाषण आरम्भ किया। यह भी अपने रूप लावण्य से

अपूर्व शोभा को धारण कर रही थी। भगवान के चरणकमलों में उपस्थित हो कर बड़े विनीत भाव से वह इस प्रकार बोली!—

भगवन्! मेरा नाम असत्यमृषा है, दूसरे शब्दों में मुझे व्यवहार भाषा कहते हैं, मैं इन तीनों से छोटी और चौथे स्थान पर हूँ (*)

भगवन्! मेरी यह तीनों बहनें बोलने और अपनी प्रशंसा के गीत गाने में बड़ी निपुण हैं जब कि मैं तो एक सीधी सादी अबोध बालिका हूँ, मुझे तो इन का वाद विवाद अच्छा नहीं लगता। इसीलिये मैं इन से प्रायः अलगसी रहती हूं। तथा अबोध होते हुये भी आप श्री ने मुझे जो अपने निकट स्थान दे रक्खा है यह मेरे परम सौभाग्य की बात है। मेरी बड़ी बहिन-सत्यभाषा-तो आपके सदैव समीप रहती है इस के आदरणीय स्थान पर मेरे को किसी प्रकार की ईर्षा नहीं, और वह है भी इसी योग्य। परन्तु मुझे भी आप अपना रहे हैं बस यही मेरे लिये पर्याप्त है। जब मैं आपके मुखारविन्द से यह सुन पाती हूँ—"हे आर्यो! सत्य और व्यवहार ये दोनों भाषायें उपयोग पूर्वक भाषणीय हैं।"

(*) अह भिक्खू या जाणेज्जा चत्तारि भासा-जायाइ, तजहा सच्च-मेग पढम भासज्जाय, बीय मोस, तइय सच्चामोस, न रोव स च रोव मोस रोव सच्चामोस असच्चामोस णाम ते चउत्थ भासाज्जात" (७७१ आचारांग अ० १२ उ० १) अर्थात् सत्य भाषा मृषा भाषा मिश्र भाषा और जो न सत्य हो न झूठ ही हो उस का नाम असत्यमृषा अर्थात् व्यवहार भाषा है।

हम मेरे दृप का पारावार नहीं रहता। मेरी बहिन—सत्य का स्थान आदि है और मे। चतुर्थ अर्थात् सब से अतिम है। तब आदि और अत की हम दोनों बालिकाओ का ग्रहण और मध्य की इन दोनों बहिनों का त्याग करने के लिये आप श्री का जो उपदेश है वह हमारे मे विद्यमान गुण दोषों के अनुरूप ही है। किसी वस्तु का ग्रहण और त्याग उसके अपने गुण दोष पर ही निर्भर करता है। इस म किसी को उपालम्भ देना व्यर्थ है।

प्रभो! सभी प्रकार के सासारिक और धार्मिक कार्यों में जनता जो मेरा अधिक से अधिक आदर करता है उसका एक मात्र श्रेय आप श्री को ही है, मैं ता एक तुच्छ अबोध बालिका हूँ फिर मेरा आत्मा में इतना आनन्द इतना मान यह आपके ही चरण कमलों का प्रताप है,

नाथ! आपके आदेशानुसार किसी को किसी प्रकार की भी हानि न पहुँचाना, और शान्त भाव से अपने अधिकार को सुरक्षित रखते हुए कर्तव्य कार्य म प्रवृत्त रहना ही मेरे जीवन का एक मात्र ध्येय है, मेरी इस वांछनीय स्वतत्र प्रवृति से संसार मे शायद ही किसी व्यक्ति को विरोध हो। आप सर्वज्ञदेव की कृपा से इस लघुता में प्राप्त हुई प्रभुता को देख कर यदि मेरे म भी गर्व की मात्रा का उदय हो जावे तो यह अस्वाभाविक नहीं है।

भगवन्! आगमों मे मेरे स्वरूप का चार (*) प्रकार से

(*) असच्चामोसा एं भते! भासा चउव्विया पईत्ता प० गो० दुवालसविहा प० तजहा—आमतणि १ आणमणि २ जायणी ३ तह

निर्देश किया है यथा-(१) आमंत्रणी-हे देवदत्त इत्यादि।

प्रभो ! जब किसी को सम्बोधित करना होता है अर्थात् बुलाना होता है उस समय मेरा ही उपयोग किया जाता है। (२) आज्ञापनी—किसी कार्य के लिये प्रवृत्त करना—यथा-हे बाल

पुच्छणीय ४ पण्णवणी ५ पच्चक्खाणी ६ भासा भासा इच्छाणुलोमा ७ ॥ १ ॥ अणभिग्गहिया ८ भासा भासा य अभिग्गहमि बोद्धव्वा ९ संस करणी भासा १० वायड ११ अव्वायड चेव १२ ॥ २ ॥ (सूत्र १६५

व्याख्या—असत्यामृषा द्वादश-विधा, तद्यथा—"आमंतणि" इ तत्र आमन्त्रणी हे देवदत्त इत्यादि, एषा हि प्रागुक्तसत्यादि भाषा त्रय लक्ष विकलत्वात् सत्या नापि मृषा नापि सत्या मृषा केवल व्यवहारमात्रप्रवृत्तिहे सत्यामृषा १ एव सर्वत्र भावना कार्या, आज्ञापनी, कार्येपरस्य प्रवर्तन, पृ कुर्वति २ याचनी वस्त्रादि वस्तुविशेषस्य देहीति मार्गणं, पृच्छनी अवि तस्य सन्दिग्धस्य वस्यचिदर्थस्य परिज्ञानाय तद्विद पार्श्वे चोदना प्रज्ञापनी विनीत विनयस्य विनय जनस्या उपदेश दान यथा, प्राणिवधान्नि भवन्ति भवान्तरे प्राणिना दीर्घायुष इत्यादि उक्त —पाणिवहाउ नियं हन्ति दाहाउयाँ अरोगाया एमाइ पण्णत्ता पण्णवणी वीयरागेहि ॥ ५ याचमानस्य प्रतिषेध-वचन प्रत्याख्यानी ६ इच्छानुलोमा नाम य कश्चित् किंचित्कार्यमारभमाणः कञ्चन पृच्छति, प्रवाद-करोतु भ ममाप्येतदभिप्रेतमिति ७ अनाभिग्रहा-यत्र न प्रतिनियतार्थावधारणं, बहुकार्यवस्थितसु कश्चित् कञ्चन पृच्छति किमिदानीं करोमि ? स प्राह यत्प्रतिभासते तत्कुर्विति ८ अभिगृहीता—प्रतिनियतार्थावधारणं यथा इ मिदानी कर्तव्यमिद नेति, ९ संशय करणी, या वाक् अनेकार्थाभिधा

पु.पद्, इत्यादि प्रयोगों में भी में ही काम आतो हैं। (३) याचनी- किसी से किसी वस्तु की याचना करना, (४) पृच्छनी—सन्दिग्ध विषय में उत्पन्न हुए सन्देह की निवृत्ति अथवा अर्थ-परिज्ञान के लिये किसी विद्वान से पूछना। (५) प्रज्ञापना—विनीत—विनय युक्त शिष्य को उपदेश देना यथा—हे शिष्य! जो जीव प्राणियों का बध नहीं करते वे भवान्तर में दीर्घायु होते हैं इत्यादि।(६) प्रत्याख्याना—मागने पर निषेध कर देना। (७) इच्छानुलोमा— कोई भी कार्य आरम्भ करते हुये किसी के पूछने पर यह कहना कि आप इस काम को करें मेरी भी यह सम्मति है। (८) अन- भिगृहीता—बहुत से कार्य उपस्थित हो जाने से पूछ २ कर काम करना जैसे कि अब मैं क्या करूं ? इसके उत्तर में यह कहना जो तुम को अच्छा लगता है पहले उस करो। (९) अभिगृहीता-प्रतिनियत अर्थों के निश्चय करने पर उसी समय वह कार्य करने लिये किये जाने वाला वाक् प्रयोग। (१०) संशयकरणी—अनेक अर्थों वाले शब्दों का प्रयोग करना यथा-सैन्धव लाओ। यहां पर सैन्धव शब्द के लवण, वस्त्र पुरुष और अश्व ऐसे अनेक अर्थ हैं, इस के श्रवण से आदेशित पुरुष को सन्देह हो जाता है कि वह इन में से किस को लावे।

करस्य संशयमुत्पादयति यथा सैन्धवमानीयतामित्यत्र सैन्धवशब्दो लवणवस्त्र पुरुषवाजिषु १० व्याकृता या प्रकटार्था ११ अव्याकृता, अतिगम्भीर शब्दार्था, अव्यक्ताक्षरप्रयुक्ता वा अविभावितार्थत्वात् १२

[प्रज्ञापना सू० भाषा पद ११]

(११) व्याकृता—सुनने मात्र से जिसका अर्थ प्रकट हो जावे।

(१२) अव्याकृता—अतिगम्भीर शब्द और अर्थ से युक्त अथवा अव्यक्त अक्षरों वाली।

प्रभो! यह संक्षिप्त रूप है, इन रूपों से मैं जगत् पर अपना शासन कर रहा हूँ। मेरा मार्ग मेरी इन तीनों ही बहनों से अलग है, मैं इन के किसी कार्य में हस्तक्षेप नहीं करती, और अपना स्वतन्त्र शासन चला रही हूँ।

भगवन्! आपने देख ही लिया है कि-श्रुत ज्ञान की उपदेष्टा एक मात्र मैं हूँ, आमन्त्रण करने, आज्ञा देने, याचना करने, पूछने और प्रज्ञापन करने एवं प्रत्याख्यान और इच्छानुकूल कार्य करने में तथा अनभिगृहीत अर्थों के पूछने, संशय या विभाग करने, और संशय काल में अर्थ निर्णय करने एवं व्यक्त और अव्यक्त शब्दार्थ के ज्ञान सम्पादन में एक मात्र मैं ही काम आती हूँ। अस्तु अब मैं आप से क्षमा चाहती हूँ और उपस्थित जनता से यह निवेदन करती हुई विश्राम लेती हूँ कि वह मेरे पूर्वोक्त भाषण पर अवश्य विचार करें।

जीव—इस प्रकार असत्यामृषा नाम की चौथी बालिका का भाषण समाप्त हो जाने पर जीव नाम का छोटा युवक भगवान् के सन्मुख प्रस्तुत हुआ। वह अत्यन्त सूक्ष्म श्वेत वस्त्रों को धारण किये हुये पूर्ण युवावस्था सम्पन्न अपने रूप लावण्य से जन समुदाय की दृष्टि को अपनी ओर खींचता हुआ अपूर्व शोभायमान हो रहा था। उसने बड़े विनीत भाव से भगवान् के चरणों में विधि-पूर्वक

वन्दन किया, पश्चात् हाथ जोड़ कर भगवान् के सम्मुख उपस्थित हुआ। उसकी उस समय की शोभा कुछ अपूर्व ही थी। आनन्दातिरेक से उसका मुख-कमल खिल खिला उठा था। आंखों से तेज की रश्मियें निकल रही थीं। शरीर का लावण्य देखने वालों को विस्मय में डाल रहा, था। इतने में पहली-सत्यभाषा-और चौथी-व्यहार भाषा बालिका दोनों ही उस के पास आकर खड़ी हो गई, वह इन दोनों का सहचारी है और बीच की दोनों बालायें असत्य और मिश्र भाषा-लज्जाशील होकर इसके पीछे दूर होकर खड़ी हो गई। दोनों बालाओं के मध्य मे खड़ा हुआ (वह) युवक इस प्रकार शोभा देता था जैसे दो भागों में विभक्त हो कर समान रूप से खड़ी हुई आठ सिद्धियों के मध्य में उपस्थित परम यौवन सुशोभित होता है। अधिक क्या कहें इस दृश्य के समय ऋद्धि और सिद्धि से सम्पन्न विनायक की शोभा भी मन्द हो रही थी। तब वह युवक भगवान के चरणों में फिर नमस्कार करता हुआ उनकी अनुमति मिल जाने पर इस प्रकार बोला—

भगवन्! मैं भी अपना वृत्तान्त सुनाने के लिये चिरकाल से उत्कंठित हो रहा हूँ। मेरा वृत्तान्त कुछ अधिक लम्बा है इस लिये मैं उपस्थित सभ्यजनों से भी प्रार्थना करता हूँ कि वे मेरा जीवन वृत्तान्त दत्तचित होकर श्रवण करें।

मेरा नाम जीव है। मेरा अस्तित्व अनादि निधन है। ज्ञान दर्शन वीर्य और उपयोग ये मेरे सहभावी गुण हैं। मैं अपने में विश्व के समस्त पदार्थों के जानने की —

मेरा जीवन वृत्तान्त सुनिये ?

मेरा सर्व प्रथम स्थान अनादिकाल से चला आने वाला-जो तिर्यंच गति में रहा है और मैंने पाप कर्मों का उपार्जन १ भी वहीं पर ही किया जिसके फल स्वरूप अनन्त यातनाओं का अनुभव

---

(१) जीवाणा भंते ! पाव कम्म कहिं समज्जिणिसु कहिं समयरिसु ? गोयमा ! सव्वेवि ताव तिरिक्ख जोणिएसु होज्जा (१) अहवा तिरिक्ख जोणिएसुयणेरइएसुय होज्जा (२) अहवा तिरिक्ख जोणिएसु य मणुस्सेसु य होज्जा (३) अहवा तिरिक्खजोणिएसुय देवेसु य होज्जा (४) अहवा तिरिक्खजोणिएसु य मणुस्सेसु देवेसुय होज्जा (५) अहवा तिरिक्खजोणिएसुयणेरइएसुय देवेसुय होज्जा (६) अहवा तिरिक्ख जोणिएसुय मणुस्सेसुय देवेसुय होज्जा (७) अहवा तिरिक्ख जोणिएसुय णेरइएसुय मणुस्सेसु देवेसुय होज्जा (८)

[भगवती सूत्र शत० २८ उद्दे० १]

टीका—'जीवा ण भंते ! ' इत्यादि, 'कहिं समज्जिणिंसु त्ति कस्यां गतौ वर्तमाना 'समर्जितवन्त' ? गृहीतवन्त 'कहिं' 'समायरिंसु' त्ति कस्यां समाचरितवन्त ? पाव कम्म हेतु समाचरणेन, तद्विपाकानुभवनेनेति वृद्धा' अथवा पर्याय शब्दावेताविति, 'सव्वेवि ताव तिरिक्खजोणिएसु होज्ज' त्ति, इह तिर्यग्योनि सर्वे जीवाना मानुष्यादीनां बहुत्वात् ततश्च सर्वेऽपि तिर्यग्भ्यो ऽन्ये नारकादयस्तिर्यग्भ्य आगतास्तत्र कदाचिद् भवेयुस्ततस्ते सर्वेऽपि तिर्यक्षु नव नभूवन्निति व्यपदिश्यन्ते, अयमभिप्राय —ये विवक्षित समये नारकादयोऽभूवन्स्ते-ऽन्तत्वेन समस्ता अपि सिद्धिगमनेन तिर्यग्गति प्रवेशेन निर्लेपितयाद् वास्तवत्व तिर्यग्गतेरनन्तत्वेनानिर्लेप ेपत्वात्तत्व उद्वृत्तास्ति

मेरे लिये अनिवार्य था। तब मैं किसी क्षयोपशम भाव के कारण विशुद्धि के मार्ग का विकास-मार्ग का अनुसरण करता हुआ मनुष्य योनि को प्राप्त हुआ तब मैंने अपने आत्मविकास के लिये भाषा पर्याप्ति का उपार्जन किया, कारण कि इसके द्वारा ही स्वाध्याय, ध्यान और सत्य मार्ग का ठीक २ प्रकाश हो सकता है। फिर मैंने जो पुद्गल द्रव्य से भाषापने ग्रहण किये व स्थित पुद्गल हैं द्रव्य से अनन्त प्रदेशात्मक द्रव्य ग्रहण किया, क्षेत्र से असंख्यात आकाश के प्रदेशों पर ठहरा हुआ पुद्गल द्रव्य ग्रहण किया, काल से अन्यतर समय की स्थिति वाले पुद्गल ग्रहण किये, भाव

उत्पत्तिस्थानेषु नारकाणितत्वनोत्पन्नास्ततस्ते, तिर्यग्गतौ नरकगत्यादिषु मूल कर्म समर्जितं त इत्युच्यत इत्येक, 'अहवा तिरिक्ख जोणिएसु नेरइएसु य' त्ति विवक्षितसमये ये मनुष्येभ्यो अभूवन् निर्लेपतया तथेदृशा उत्पत्तिस्थानेषु च तिर्यग्नारकस्य आगत्योत्पन्ना, त चैव व्यपदिश्यन्ते—तिर्यग्योनिकेभ्यभूवन्नेते, ये च यत्र भूवन्ते तत्रैव कर्मोपार्जितं त इत्यर्थो लभ्यत इति द्वितीय, 'अहवा तिरिक्खजोणिएसु य देवेसु' त्ति विवक्षित समये ये नैरयिकदेवास्ते तथेव निर्लेपतया उत्पत्तिस्थानेषु च, तिर्यग्मनुष्येभ्य आगत्योत्पन्ना ते चैव व्यपदिश्यन्ते—तिर्यग्मनुष्येभ्यभूवन्नेते, ये च यत्र भूवन्ते तत्रैव कर्मोपार्जितं त इति सामर्थ्यगम्यमिति तृतीय तदेवमनया भावनया उत्पद्यते भङ्ग, तत्र नरकगत्यैव, अ ये तु तिर्यग्नैरयिकाभ्यां तिर्यग्मनुष्याभ्यां तिर्यग्देवाभ्यामिति षड्द्विक संयोगा, तथा तिर्यग्नैरयिक मनुष्यैस्तिर्यग्नैरयिकदेवैस्तिर्यग्मनुष्यदेवैरिति त्रयस्त्रिकसंयोगा एकश्च चतुष्कसंयोग इति।

[भगवती सूत्र शत० २८ उद्दे० १]

से, वर्ण वाले गन्ध वाले रस वाले और स्पर्शवाले पुद्गल ग्रहण किये। तथा वर्ण से पाच वर्ण वाले गन्ध से दो गन्ध वाले रस से पाच रस वाले और स्पर्श से चार स्पर्श वाले पुद्गल ग्रहण किये यथा-शीत स्पर्श, उष्ण स्पर्श स्निग्ध स्पर्श और रूक्ष स्पर्श, इतना ही नहीं जो पुद्गल द्रव्य आत्म प्रदेशों से स्पर्शित हो रहा है उस को ग्रहण किया, अणु और बादर तीनों दिशाओं में ठहरे हुवे पुद्गल सविषय होने पर ग्रहण किये, और वे पुद्गल भाषा रूप में परिणत करके छोड़ दिये गये। ये ही पुद्गल वृद्धि पाते २ लोकान्त तक जा सकते हैं।

भगवन्! जब मैंने उक्त प्रकार से पुद्गलों का ग्रहण किया तब फिर वे सत्य असत्य मिश्रित और व्यवहार भाषा के रूप में परिणत हो गये। मेरे मिथ्यात्व और अज्ञान-भाव के कारण से असत्य-भाषा और मिश्र-भाषा ये दोनों ही मेरी सहचरी बन गईं और मैं इन के वश हो गया अतः जिस प्रकार इन्होंने चाहा उसी प्रकार मेरे से करवा डाला। मैं अपनी सुध बुध को सब प्रकार से खो बैठा। जब मैंने इन से कहा कि मैं तो अब अभाषित बनना चाहता हूँ। क्यों कि-मैंने सुना है कि सिद्ध प्रभु अभाषक होते हैं अतः मैं भी चाहता हूँ कि उस गति को प्राप्त होकर अभाषक १

- (१) जीवाणं भंते! किं भासगा अभासगा? गोयमा! जीवा भासगावि अभासगावि से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चती, जीवा, भासगावि अभासगावि गोयमा? जीवा दुविहा पण्णत्ता तं-जहा संसारसमावण्णगा य असंसार-समावण्णगा य तत्थ णं जे ते असंसार-समावण्णगा ते णं सिद्धा,

पद की प्राप्ति करके अजर अमर और स्थिर रूप से सदैव रह सकूँ तब मुझे असत्य-भाषा ने विश्वास दिलाया कि मैं तुमको अभाषक बना दूँगी, इस विश्वास में जब मैं इसका अनुगामी बना तब इसने मुझे पांच स्थावरों में डाल दिया। जिसमें मैं संख्यात असंख्यात और अनन्त काल पर्यन्त अभाषक दशा में रहा, जब मैं वहां से द्वीन्द्रिय आदि त्रसकाय में आया तब मुझे इस प्रकार के दुःखों का अनुभव करना पड़ा जो मेरे कथन से बाहिर हैं अर्थात् मुझ से कहे नहीं जा सकते। यद्यपि एकेन्द्रिय दशा

सिद्धा णं अभासगा, तत्थ णं जे ते संसारसमावण्णगा ते दुविहा पण्णत्ता तंजहा सेलेसीपडिवण्णगा य असेलेसीपडिवण्णगा य तत्थ णं जे ते सेलेसीपडिवण्णगा ते णं अभासगा, तत्थ णं जे ते असेलेसीपडिवण्णगा ते दुविहा प० तंजहा एगिंदिया य अणेगिंदिया य तत्थ णं जे ते एगिंदिया ते णं अभासगा तत्थ णं जे ते अणेगिंदिया ते दुविहा प० तं०—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य तत्थ णं जे ते अपज्जत्तगा ते णं अभासगा तत्थ णं जे ते पज्जत्तगा ते णं भासगा, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चति जीवा भासगा वि अभासगा वि। नेरइया णं भंते! किं भासगा अभासगा? गोयमा! नेरइया भासगा वि अभासगा वि से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चति-नेरइया भासगा वि अभासगा वि? गोयमा! नेरइया दुविहा पण्णत्ता तंजहा पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य तत्थ णं जे ते अपज्जत्तगा ते णं अभासगा, तत्थ णं जे ते पज्जत्तगा ते णं भासगा, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चति—नेरइया भासगा वि अभासगा वि, एवं एगिंदियवज्जाणं निरंतरं भाणियव्वं॥ (सूत्र १६६) प्रज्ञापना सूत्र भाषा पद ११

से भी मैंने असहनीय दुःखों का अनुभव किया तथापि वे दुःख अव्यक्त रूप में थे, अब कि मनुष्य भव में अनुभव किये जाने वाले दुःख व्यक्त हैं और परम असह्य हो रहे हैं। यह सब कुछ असत्य और मिश्र भाषा के ही संसर्ग का परिणाम है। ये दोनों मिथ्या दर्शन-शल्य की सहचरी हैं। और रात दिन उसी के गुण गाती रहती हैं। इन्होंने मुझे अपने चंगुल में फँसाया और मैं बुरी तरह फँसा जिस का मुझे बार २ पश्चात्ताप होता है। अस्तु—

(१) यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि जिस भाषा के बोलने के लिये भाषा वर्गणा के पुद्गल ग्रहण किये जाते हैं वह चार तरह की भाषा

(प्रज्ञापना सूत्र भाषा पद ११)

(१) जीवे णं भंते ! जाइं दव्वाइं सच्चभासत्ताए गिण्हति ताइं किं सच्चभासत्ताए निसिरइ मोसभासत्ताए निसिरइ सच्चामोस-भासत्ताए निसिरति असच्चामोसभासत्ताए निसिरइ ? गोयमा ! सच्चभासत्ताए निसिरइ नो मोसभासत्ताए निसिरति नो सच्चा-मोसभासत्ताए निसिरति नो असच्चामोसभासत्ताए निसिरइ, एवं एगिंदियविगलिंदियवज्जो दंडओ जाव वेमाणियाणं एवं पुहुत्ते-णवि। जीवे णं भंते ! जाइं दव्वाइं मोसभासत्ताए गिण्हति ताइं किं सच्चभासत्ताए निसिरति मोसभासत्ताए सच्चामोसभासत्ताए असच्चामोस-भासत्ताए निसिरइ ? गोयमा ! नो सच्चभासत्ताए निसिरति मोसभासत्ताए निसिरति नो सच्चामोस नो असच्चामोसभासत्ताए निसिरति, एवं सच्चा-मोसभासत्ताएवि, असच्चामोसभासत्ताएवि एवं चेव नवरं असच्चामोसभासत्ताए विगलिंदिया तहेव पुच्छिज्जंति जाए चेव गिण्हंति ताए चेव निसिरंति, एवं एते एगत्तपुहुत्तिया अट्ठ दंडगा भाणियव्वा (सू. १७२ प्रज्ञापना भाषा पद ११)।

का व्यवहार करता है अगर सत्य भाषा के व्यवहार के लिये भाषा वर्गणा के पुद्गलों का ग्रहण हो तो सत्य भाषा, और असत्य भाषा के लिए पुद्गलों का ग्रहण तो असत्य भाषा का व्यवहार करना पड़ता है। परन्तु इस असत्य भाषा के प्रभाव से प्रभावित होकर मैंने ऐसे ही पुद्गलो का ग्रहण किया कि जिनकी परिणति असत्य भाषा के ही रूप में होती है। कभी २ सत्य भाषा के पुद्गलों को ग्रहण करने की अभिलाषा भी होती रही परन्तु इसके तीव्र प्रभाव से व्यामोहित हुआ मैं ऐसा करने में असमर्थ रहा। फलस्वरूप इस लोक में मेरी प्रतारणा हुई, मैं सब का अविश्वास पात्र बना। तथा मिथ्या दर्शन के संसर्ग में आकर अनन्त संसार चक्र में परिभ्रमण किया और नाना प्रकार के असह्य दुःखों को सहा। इसके अतिरिक्त मिश्र भाष ने तो मुझे कहीं का भी नहीं रहने दिया। बल्कि वसुदेव राजा की भांति मुझे अधोगति में ही धकेला।

"भगवन्! इन दोनों के सहवास में आने से मेरी जो दुर्दशा हुई है उसका वर्णन करते हुए तो जिह्वा रुकने लगती है पूर्णादिराय के इन्होंने मुझे विश्वास में लेकर मेरे साथ बहुत ही अनुचितव्यवहार किया। इनकी कृपा से मैंने जो २ यातनायें भोगी हैं उनका स्मरण होते ही मेरा शरीर कांप उठता है। मैं तो इनको बहुत भली समझता था परन्तु ये तो देवी के वेष में छिपी हुई डायनें हैं।

"भगवन्! आप मुझे नर्क चंगुल से जिस तरह भी हो सके छुटकारा दिलाने की कृपा कीजिये ? मैं तो इनसे अब बहुत ही तंग आ गया हूँ और इसीलिये आपकी शरण ही है।"—

प्रभो! मेरी रक्षा करो! रक्षा करो॥

जीव नाम का युवक पुरुष अभी अपना भाषण समाप्त भी न करने पाया था कि वे दोनों असत्य और मिश्र भाषा बीच में बोल उठीं।—

भगवन्! यह युवक बड़ा प्रपंची है, आप इसके वक्तव्य पर बिलकुल ध्यान नहीं देना। यह हम पर झूठा ही दोष लगा रहा है, जो कुछ भी नरक तिर्यंच आदि योनियों में प्राप्त होने वाली यातनाओं के भोगने के विषय में इसने कहा है वह सब ठीक है परन्तु इसमें हमारा कोई दोष नहीं, इसकी करतूत का ही यह फल है। हमने इसको कभी किसी बात की प्रेरणा नहीं की, प्रत्युत हमें ही इसने हर एक कार्य के लिये बाधित किया और हमको इसकी आज्ञानुसार सब कुछ करना पड़ता रहा है इसमें यदि कुछ दोष है तो वह इसका अपना है हमारा उसमें कोई सरोकार नहीं, यह स्वयं ही हमारे अनुरूप असत्य और मिश्र भाषा के अनुरूप पुद्गल द्रव्य का ग्रहण करने में प्रवृत्त रहा, और उससे हमारे स्वरूप का संगठन करके उसके द्वारा अपना कार्य सिद्ध करता रहा है। इसमें हमारा अणुमात्र भी कसूर नहीं है। जैसे कोई मदिरा पीने वाला पुरुष नालियों में गिरता हुआ अपनी दुर्दशा के लिये मदिरा को दोषी ठहराता है वैसे ही यह अपनी यातनाओं के भोगने का दोष हम

पर थोपता है ! क्या मदिरा ने कभी किसी के पास जाकर यह प्रार्थना की है कि तुम मुझे पियो ? तो फिर मदिरा विचारी का क्या दोष, उसका तो यह स्वभाव ही है कि उसे जो पीयेगा वह अवश्य उन्मत्त होगा अर्थात् उसमें वह अवश्य उन्मादकता लावेगी। पुरुष को स्वयं चाहिए कि वह उसके संसर्ग से दूर रहे। इसी भांति हमने कभी भी इससे अपने व्यवहार के लिए प्रार्थना नहीं की, यह तो बलात् हमको अपने संसर्ग में लाता रहा है।

"प्रभो! हम अबला हैं और इसके आश्रित हैं। इसलिए अनिच्छा होने पर भी हमको इसके आदेशानुसार काम करना पड़ता है। हम तो अपने गुण स्वभाव के अनुसार पूरी ईमानदारी से इसकी आज्ञा का पालन करती रहती हैं, फिर यदि कोई इष्ट या अनिष्ट हो तो उसका उत्तरदायित्व हम पर कैसे ? हम तो इसकी चया में द्वारभूत हैं। जैसे कुठार के द्वारा लकड़ी का छेदन भेदन करने में छेदन भेदन क्रियाओं का कर्तृत्व कुठार पर नहीं किन्तु कुठार को चलाने वाले पुरुष पर ही है ठीक उसी प्रकार हमारा व्यवहार उचितानुचित भाषण करने पर उससे निष्पन्न होने वाले अच्छे बुरे फल का उत्तरदायित्व भी इसी पर है अर्थात् उस फल को यही भोगेगा न कि हम या कोई और। इसलिये अपनी दुःखमयी वेदनाओं का कारण हमें बताकर हमको उपालम्भित करना इसका सरासर अन्याय है जो कि किसी प्रकार भी क्षन्तव्य नहीं माना जा सकता है।"

इस प्रकार उन छ व्यक्तियों की आत्मकथा को सुनकर परम दयालु सर्वज्ञ और सर्वदर्शी स्वनामधन्य भगवान महावीर स्वामी बोले,- "भाग्य शालियो! तुम्हारे सब के अभिभाषणों को मैंने भली प्रकार सुना, और इस परिषद् ने भी दत्तचित्त होकर श्रवण किया इसमें सदेह नहीं कि तुम सब भाषण करने में खूब निपुण हो? तुम्हारा वाक् पटुता श्लाघनीय है और इसी लिये अपना २ पक्ष स्थापन करने म तुम में से किसी ने भी कोई कमी नहीं रक्खी। पर तुम सब का कथन सर्वथा असत्य नहीं किन्तु उसमें अपेक्षा कृत सत्यता भी है । हम तुम सबके वास्तविक स्वरूप को अच्छी तरह से जानते हैं और जिस परिस्थिति म रह कर तुम्हें काम करना पड़ता है उससे भी हम भली भांति परिचित हैं । परन्तु तुमको ध्यान अवश्य रखना चाहिये कि तुम सब चिरकाल से एक दूसरे के समीप में रहने वाले हो, एक को दूसरे से हर समय का वास्ता है, अर्थात् एक को दूसरे की सहायता का आवश्यकता रहती है। और तुम सब एक ही स्थान पर रहने वाले एवं जीवन मरण के साथी हो इसलिये तुमको आपस म सदा हिल मिल कर रहना चाहिये परस्पर प्रेम और शान्ति का बर्ताव रखना चाहिये इसी में तुम सब की भलाई है। परस्पर के ईर्षा द्वेष और कलह क्लेश में तुम सब की ही हानि है, लाभ किसी का नहीं। अतः जो कुछ भी बोलो समझ सोचकर बोलो जो कुछ भी करो विवेक और विचार से करो जिससे पीछे पश्चात्ताप न करना पड़े। (चार

बालिकाओं को लक्षित करके) देखो तुम चारो का उद्गम स्थान एक है ? स्वभाव में विभिन्नता होने पर भी तुम्हारा उत्पत्ति स्थान एक ही है, [...न्द की ओर संकेत करके] यह युवक भी तुमारा सहो दर ही है। इसका जन्म स्थान भी वही है जो तुम्हारा, इस नाते से तुम पाचों आपस में बहन भाई हो, और यह छटा युवक तुम सबका आश्रय दाता है। इसी पर ही तुम पाचों की स्थिति निर्भर है। इसके बिना तुमारा कोई ठिकाना नहीं और खास कर तुम चारों बालिकाओं का। अत तुम सबको इसे प्रेम पूर्वक अप नाना चाहिये और यथाशक्ति इसकी सहायता के लिये उद्यत रहना चाहिये। [नीरजी ओर लक्ष्य करके] तथा इस युवक को भी उचित है कि यह तुमारे उपकार को समझे और तुमसे पूरी र स ानुभूति रक्खे ? यह इसकी बड़ी भारी भूल है जो तुमको उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगता है यदि इसको तुम्हारी सहायता प्राप्त न हो तो यह कुछ भी नहीं कर सकता सका कोई भी काय तुम्हारी सहायता के बिना सम्पन्न नहीं हो सकता। तात्पय कि ...मस्त ससारवर्ति सारे काय तुम्हारे ही सहयोग से हो रहे हैं! इसलिये तुम्हारे विषय में इसको सदैव चिंतित रहना चाहिये और अधिक से अधिक कृतज्ञता प्रदर्शित करना चाहिये। इसी में इसका हित है। परन्तु ...सके भी कुछ स्वाधीन नहीं, यह भी इस समय परवश हो रहा है। परवशता के कारण इसको अपने स्वरूप का बिलकुल ध्यान नहीं रहा। भेड़ों में विचरने वाले सिंह की भांति यह भी अपने आपको भूला हुआ है। सारे जगल मे अकेला और सबका सम्राट् होकर विचरने वाला एक सिंह,

स्वरूप को भूलने से एक गडरिये की लाठी से हाका जाकर भेड़ों के साथ परतन्त्रता के पाश में बंधा हुआ तरह तरह की यातनायें भोगे। यह जितनी आश्चर्य जनक बात है उतनी ही बल्कि इससे भी अधिक आश्चर्य में डालने वाली इस छठे युवक की बात है। यह परम धनी होते हुए भी निधन, परम ऐश्वर्य का अधिपति होते हुए भी कंगाल अपने में हर प्रकार की शक्ति रखते हुए भी महादुर्बल, सरज्ञान सम्पन्न होते हुए भी महामूढ़। और सब प्रकार से स्वतन्त्र एवं स्वाधीन होने पर भी पराधीन और परमुखा पेक्षी बन रहा है। क्या यह कम आश्चर्य की बात है? महानुभावो इसकी इस प्रकार की दयनीय दशा को देखकर हमको इस पर बड़ा तरस आता है, तुमको भी इस पर दया करना चाहिये और इसके मंगल कल्याण के लिये इसकी अधिक से अधिक सहायता करनी चाहिए? जिससे इस बालक को इन उपस्थित यातनाओं से मुक्त होकर कभी सुख का नाम लेने का भी अवसर प्राप्त हो सके? और तुम सब का हित भी इसी में है।

तब जीव नामक छठे पुरुष को सम्बोधित करते हुए भगवान् बोले— अरे युवक! तू अपने स्वरूप को भूलकर किस गहरी निद्रा में सोया पड़ा है? उठ! जाग और अपने वास्तविक स्वरूप को देख! तू कौन है? और अब क्या बना हुआ है? जैसे रात का भूला हुआ, दिन में घर आजाने पर भूला हुआ नहीं कहलाता उसी प्रकार यदि तू अब भी सम्भल जाय और अपने स्व स्वरूप को पहचान ले तो तेरा कुछ भी नहीं बिगड़ा। इन सभी प्रकार की

यातनाओं का कारण तेरा वैभाविक परिणमन है, इन वै
परणतियों ने ही तुझे दासता की जंजीरों में जकड़ रखा है
स्वभाव में रमण करने वाला सबका अधिपति और सु
शासन करने वाला सर्व तन्त्र स्वतन्त्र एक सर्व विलक्षण चैत
आत्मतत्त्व है। निश्चय से तो तेरे में इन व्याधियों का सम
नहीं। यह तो तुम्हारी अपनी बुलाई हुई है, तुम जब चाहो
छोड़कर अपने निज स्वरूप में रमण कर सकते हो। इन्हें
स्वय अपनाया और अब ये तुम्हारे लिये वबाल बन रहा
इसमें किसी दूसरे को उपालम्भ देने की आवश्यकता नहीं।
अपने भूले हुए स्वरूप को प्राप्त करने के वास्ते जिस
अनुसरण करना तेरे लिये आवश्यक है अर्थात् जिन
तू अपने आत्मस्वरूप को प्राप्त कर सकता उनको
धान होकर सुन ?

तू क्रोध मान माया और लोभ से अभिभूत होकर
कषायात्मा बन रहा है अर्थात् इन कषायों को ही तू
रूप समझ रहा है, इनके प्रगाढ़ सम्बन्ध से ही तुझको नाना
प्रकार की ऊंच नीच योनियों में भ्रमण करना पड़ा है, और
प्राप्त होने वाली असह्य वेदनाओं का अनुभव किया है। परन्तु
वास्तव में तेरा स्वरूप उपयोग अर्थात् दर्शन और ज्ञान है। ...
ज्ञान के प्रभाव से तू अनेक प्रकार के ... को दूर कर सक
है, तू अनन्त शक्तियों का भंडार है। तेरे प्रबुद्ध होने पर
पीछे लगी हुई ये सारी उपाधियें एक प्रबल वेग से छि...

हुए बादलों की तरह कुछ ही समय में तितर बितर हो जावेंगी सूर्य के उदय पर जैसे अन्धकार का अस्तित्व नहीं रहता उसी प्रकार तेरी ज्ञान ज्योति का उदय होते ही, तेरे अन्दर घर किये बैठा हुआ यह अज्ञान राक्षस सदा के लिये, अपना बिस्तर बोरिया उठाकर किसी अज्ञात प्रदेश में चला जायगा। इसके लिये तुमको थोड़े से पुरुषार्थ की आवश्यकता है। अतः सबसे प्रथम तू संयम और त्यागशील बनकर इन पूर्वार्जित कषायों का बहिष्कार कर। इनके बहिष्कार से इनके आश्रित और जितने विभाव या दुर्भाव हैं वे भी उसी क्षण तुमसे सदा के लिये अलग होने को प्रस्तुत हो जावेंगे। तथा जिन दो बालिकाओं—असत्य और मिथ्या-भाषा जो तुम उपाल भित कर रहे हो वे बिचारी तो तुम्हारे पास तक भी नहीं फटकेंगी इसलिये सबसे प्रथम राग द्वेष के सम्बन्ध का विच्छेद करो, उसके विच्छेद से कर्म बंध का विच्छेद होगा। इसी प्रकार क्रमशः आस्रव का निरोध सम्वर का उदय और अवशिष्ट कर्मों की निर्जरा से मोक्ष मंदिर के भव्यातिभव्य द्वार का उद्घाटन होगा। इसके लिये तुमको स्वनामधन्य मुनि पुंगव गज सुकुमार के प्रशस्त जीवन का अध्ययन और मनन करना ही पर्याप्त है।

एतदर्थ तुमको सम्यग् दर्शन सम्यग् ज्ञान और सम्यक् चारित्र रूप रत्नत्रय की आराधना में सर्वतो भाव से प्रवृत्त होना चाहिये? इससे तुम सत्य और व्यवहार नाम की इन दोनों कुलीन सहचारियों की सहायता से अपना यथेष्ट विकास कर सकोगे। तथा सम्यग् ज्ञान के उदय से तुम्हारे आवरणों वैभाविक गुणों

का तिरोभाव और तुम में स्वाभाविक गुणों का यथेष्ट प्रकाश होगा, और हेयोपादेय विचारणा की शक्ति, आविर्भूत होगी। इससे फिर तुम्हारे अन्तिम ध्येय की प्राप्ति में कुछ दूर नहीं लगेगी। यही तुम्हारे अभ्युदय का सबसे अधिक सरल और सर्व प्रकार की बाधाओं से विनिर्मुक्त एवं निष्कंटक और निर्भय राजमार्ग है।

इस मार्ग के अनुसरणार्थ तुमको सर्वप्रथम भाषा समिति की आराधना करनी होगी, उसकी सम्यक् आराधना से, तुमको द्रव्य सत्य और भाव सत्य का परिज्ञान होगा। इसके ज्ञान से तुमको भाषा प्रयोग वचन प्रयोग के विषय में विवेक प्राप्त होगा, इस विवेक से शनैः शनैः तुम सम्पूर्ण सत्यभाषी बनते हुए, एक दिन अभाषी अभाषक बनने का भी शुभ अवसर प्राप्त कर सकोगे। तथा वचन के आगमों में वर्णित भेदोपभेदों× का ज्ञान हो तुमको

× प्रज्ञापना सूत्र के ११ वें भाषापद में वचन के १६ प्रकार कहे हैं यथा—"कतिविहेणं भंते ! वयणे पन्नत्ते ? गोयमा ! सोलसविहे वयणे प० तं० — एगवयणे, दुवयणे, बहुवयणे इत्थिवयणे, पुमवयणे, नपुंसगवयणे, अज्झत्थवयणे उवणीयवयणे अवणीयवयणे, उवणीयावणीय वयणे, अवणीयोवणीय वयणे, तीतवयणे, पडुप्पन्नवयणे, अणागयवयणे, पच्चक्खवयणे परोक्खवयणे। अवणीय वयणे, उवणीय वयणे, अवणीयावणीय वयणे, इच्चेइयं भंते ! एगवयणं वा जाव परोक्खवयणं वा वयमाणे पण्णवणी णं एसा भासा ण एसा भासा मोसा ? गोयमा ! इच्चेइयं एगवयणं वा जाव परोक्खवयणं वा वयमाणे पण्णवणी णं एसा भासा ण एसा भासा मोसा" (सूत्र १७३)

टीका —'कतिविहेणं भंते ! वयणे पन्नत्ते' इति एकवचनं पुरुष इ॰ द्विवचन पुरुषाविति, बहुवचन पुरुषा इति, स्त्री वचन स्त्रिय इति

आरम्भ से ही होजायगा। इसके लिये तुमको किसी प्रकार के परिश्रम की आवश्यकता नहीं।

आवश्यकता तो वचन गुप्ति के सम्यग् अनुष्ठान * की है, उसके अनुष्ठान से तुम अध्यात्म योग की साधना द्वारा, उत्तरो

वचनमपि पुमान नानुमतवचनमिद कुरुड, अध्यात्मवचा मन्यचेतसि निधाय विप्रत रक्त दयाऽन्यद् विभक्तिपुरुषि सहसा यच्चेतसि तत्रैव ब्रूते, उपनीत वचन प्रशंसा वचन यथा रूपवतीयस्त्री अपनीत वचन, निन्दा वचन यथा कुरूपा स्त्री उपनीतापनीतवचनं यत् प्रशस्य निन्दा यथा रूपवतीय स्त्री परदुश्शीला, अपनीतोपनीतवचन—यद्निन्द्य प्रशंसति यथा कुरूपा पर सुशीलेति, अतीतवचन अकरोत् इत्यादि प्रत्युत्पन्नवचन वर्तमानकालवचन करोतीत्यादि । अनागतकालवचनं करिष्यतीत्यादि, प्रत्यक्षवचन अयमित्यादि, परोक्षवचनसइत्यादि" एतानि षोडशापि वचनानि यथावस्थितवस्तुविषयाणि न कल्पनिकानि ततएतानि सम्यगुपयुज्य वदति तदास भाषा प्रज्ञापनी द्रष्टव्या, तथा चाह इच्चेइय भंते ! एगवयणं दयवयणं इत्यादि, भाषितार्थे, अन्यत्र प्रतीत एव" ।

* म—वयगुत्तयाए भंते ? जीवे किं जणयइ ? उ० निव्वियार जणयइ निव्वियारे णं जीवे वइगुत्ते अज्झप्पजोग साहणजुत्ते यावि विहरइ ॥५४॥

(छाया)—वाग्गुप्त्या भदन्त ! जीव कि जनयति ? वाग्गुप्त्या निर्विकारित्व ज नयति । निर्विकारोजीवो वाग् गुप्तोऽध्यात्म साधन युक्त श्चापि विहरति ॥ ५४ ॥

ख— वय समाहारणयाए भंते ? जीवे किं जणइ ? उ० वय समाहारण दसण पज्जवे विसोहेइ । वय समाहारण दसण पज्जवे विसोहित्ता सुलह बोहियत्तं निव्वत्तेइ, दुल्लह बोहियत निज्जरेइ ॥ ५७ ॥

और विकास करते हुए वृत्ति संक्षय रूप समाधि को प्राप्त कर सकोगे, जिसमें तुम्हारे कल्याण की पराकाष्ठा पर्यवसित है ? मोक्ष ही अपर नाम निर्वाण पद है। इस देशामें तो न गंध है न शब्द, और न रस है न स्पर्श, एवं न कोई संस्थान है और न शरीर, किन्तु केवल द्रव्यात्मा, ज्ञानात्मा दर्शन और उपयोग तथा वीर्यात्मा ही शेष रहता है जो कि अनन्त सुख सागर में सदा के लिये लीन होकर अपने शुद्ध स्वरूप से कभी भी च्युत नहीं होता ? बस इसी अनुपम पद की प्राप्ति के लिये हमने तुम्हारे प्रति पूर्वोक्त साधन मार्गों का निर्देश किया है, अस्तु अब तुम भव अवसर देखो ? आज की यह परिषद् अब विसर्जित की जाती है।

भगवान् के इस न्याय संगत और कल्याणप्रद अभिभाषण से उन छैओं व्यक्तियों सहित सारी ही परिषद् आनन्द से विभोर हो उठा और चारों ओर से जय जयकार की ध्वनि गूंजने लगी।

(छाया)—वाक् समाधारणया भदन्त ? जीव किं जनयति ?

वाक् समाधारणया वाक् साधारण दर्शन पर्यवान् विशोधयति, । वाक साधारण दर्शन पर्यवान् विशोध्य सुलभबोधिकत्वं निर्वर्तयति दुर्लभ बोधिकत्व निर्जरयति ॥ ५७ ॥ (उत्तराध्य० अ० २६)

मुद्रक —

प० भंवरलाल जैन न्यायतीर्थ

श्री वीर प्रेस मनिहारों का रास्ता

जयपुर।